भारतीय संयोजन में समाजवाद



श्रीमन्नारायण

सत्साहित्य-प्रकाशन

भारतीय संयोजन में
समाजवाद

—लोकतंत्री समाजवाद की कल्पना तथा प्रगति का विवेचन—

श्रीमन्नारायण

भूमिका

जवाहरलाल नेहरू

•

१९६६

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९६६
मूल्य
साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

कांग्रेस तथा भारत-सरकार ने अनेक अवसरों पर घोषणा की है कि उसका उद्देश्य देश में समाजवाद की स्थापना करना है। समाजवाद क्या है, और उसकी स्थापना किस प्रकार हो सकती है, ये बड़े महत्व के प्रश्न हैं। इस संबंध में हमारे प्रमुख नेताओं ने समय-समय पर चर्चा की है, लेकिन कुल मिलाकर उसका स्पष्ट चित्र किसी ने भी प्रस्तुत नहीं किया।

यह पुस्तक इस दिशा की एक मूल्यवान कृति है। इसके लेखक गांधीवादी संयोजन के प्रमुख अध्येता और व्याख्याता हैं। उन्होंने उस दृष्टि से समाजवाद के बारे में विचार किया है और इस पुस्तक में बताया है कि समाजवाद क्या है, उसके मूल उद्देश्य क्या हैं, उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न क्षेत्रों में अबतक क्या प्रगति हुई है और अभी आगे क्या करने को शेष है। पुस्तक विचार-प्रेरक है और ज्ञानवर्द्धक भी।

हिंदी के पाठक इस पुस्तक के लेखक से भली-भांति परिचित हैं। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 'मण्डल' से कुछ समय पूर्व हमने 'गांधीवादी संयोजन के सिद्धांत' पुस्तक निकाली थी, जिसका सभी क्षेत्रों में स्वागत हुआ था।

यह पुस्तक मूल अंग्रेजी में 'सोशलिज्म इन इंडियन प्लानिंग' के नाम से निकली है। इसका हिन्दी रूपान्तर श्री शोभालाल गुप्त ने किया है।

हमें विश्वास है कि देश के नव-निर्माण में रुचि रखनेवाले पाठक इस पुस्तक को अवश्य पढ़ेंगे और इसके विचारों से लाभान्वित होंगे।

—मंत्री

दो शब्द

समाजवाद की कल्पना की विभिन्न विचारकों ने विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। एशिया और अफ्रीका के हाल में स्वतंत्र हुए करीब-करीब सभी देशों ने समाजवाद को अपना राजनैतिक लक्ष्य स्वीकार किया है, भले ही वे उसका अलग-अलग मतलब निकालते हैं। भारत ने भी संसदीय लोकतंत्र के आधार पर समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था कायम करने का फैसला किया है। इस पुस्तक में मैंने भारतीय संविधान, पंचवर्षीय योजनाओं और स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री नेहरू के भाषणों और लेखों में जिस प्रकार के समाजवाद की कल्पना की गई है, उसकी लगभग ठीक-ठीक तस्वीर सामने रखने की कोशिश की है। मैं आशा करता हूं कि भारत में जैसी समाजवादी लोकतंत्री समाज-व्यवस्था कायम करने का विचार है, उसकी रूपरेखा और बुनियादी उद्देश्यों के बारे में अनेक ग़लतफ़हमियों को दूर करने में यह पुस्तक मदद देगी।

मैं अपने स्वर्गीय नेता नेहरूजी का बहुत ही आभारी हूं कि जिन्होंने इस पुस्तक की छोटी-सी भूमिका लिखने के लिए समय निकाला। समाजवाद और भारतीय आयोजन के बारे में यह उनके निश्चित विचारों की आखिरी अभिव्यक्ति है। उनका यह कथन कितना अर्थ भरा है कि "हमारा असली मकसद इन्सान को अच्छा इन्सान बनाना और यह देखना है कि इन्सान का असली धर्म क्या है?" मेरी हार्दिक इच्छा है कि जवाहरलाल नेहरू की यह कल्पना भारत के नियोजित आर्थिक विकास के बारे में आनेवाली अनेक दशाब्दियों तक हमारे प्रयत्नों का मार्ग-दर्शन करे।

—श्रीमन्नारायण

भूमिका

जो लोग भारत के विकास, समाजवाद और भारतीय-आयोजन में दिलचस्पी रखतें हैं, उन सबसे मैं इस छोटी-सी पुस्तक को पढ़ने का अनुरोध करता हूं। मैंने यह पुस्तक सारी-की-सारी नहीं पढ़ी है, फिर भी मैं यह महसूस करता हूं कि यह उपयोगी पुस्तक है और लोगों को हमारी समस्याओं पर व्यापक दृष्टि से विचार करने में मददगार होगी।

समाजवाद एक अस्पष्ट शब्द बन गया है और उसके तरह-तरह के मतलब निकाले जाते हैं। आज की दुनिया में जब रफ्तार तेज है और तकनीकी ज्ञान की भारी प्रगति हुई है, यह जाहिर है कि खुद समाजवाद की कल्पना में फेर-बदल हुआ है, फिर भी उसके बुनियादी सिद्धांत तो कायम हैं। भारत में हमारे लिए यह जरूरी है कि हम मौजूदा तकनीकी तरीकों से फायदा उठावें और खेती तथा उद्योगों की पैदावार बढ़ावें। किंतु ऐसा करते वक्त हमको अपना असली मकसद नहीं भूलना चाहिए कि इन्सान का धर्म क्या है और उसे कैसे अच्छा इन्सान बनाया जा सकता है।

यह तीसरी योजना का आखिरी दौर है और योजना-आयोग ने चौथी योजना पर विचार करना शुरू कर दिया है। यह उम्मीद की जाती है कि पांचवीं योजना के अखीर तक हम बहुत तरह से स्वावलंबी हो जायंगे और हमारी तरक्की बाहरी मदद पर इतना निर्भर नहीं करेगी। यह बात इस पर निर्भर करेगा कि हम पुरानी पगडंडियों को कितना छोड़ पाते हैं और इस जमाने के पैदावार के तरीकों को कहां तक अपनाते हैं।

कुछ लोग सोचते हैं कि आजादी मिलने के बाद हमारी तरक्की धीमी रही है। मेरे खयाल से यह सही नहीं है। अगर हम भारत और

उसके रहनेवालों की पृष्ठभूमि और देश के सामाजिक गठन को बदलने की जरूरत पर ग़ौर करें तो मेरा खयाल है कि हमने काफी ठोस तरक्की की है। उसमें भविष्य की नींव पड़ चुकी है और यह लोकतंत्र के आधार पर हुआ है। भविष्य में भूतकाल के मुकाबले तरक्की की रफ्तार और भी तेज होनी चाहिए।

इस पुस्तक के कई पाठक, हो सकता है, कि उसकी बहुत-सी बातों से सहमत न हों। यह महत्व की बात नहीं है। असली मुद्दा यह है कि हम सारी तस्वीर पर पूरी नजर डालें और लोकतंत्री समाजवाद के आदर्श को अपने सामने रखें। यह पुस्तक पाठकों को ऐसा करने में मदद देगी। मैं उनसे यह पुस्तक पढ़ने की सिफारिश करता हूं।

सर्किट हाउस,
देहरादून
२५ मई, १९६४

जवाहरलाल नेहरू

विषय-सूची

१

समाजवाद की कल्पना

'समाजवाद' शब्द की व्याख्या विभिन्न विचारकों और समूहों ने अलग-अलग रूपों में की है। वास्तव में समाजवाद की वकालत करने-वालों की संख्या बहुत बड़ी है और इस विषय का साहित्य इतना सुंदर और विविध है कि समाजवाद का ठीक-ठीक अर्थ बता सकना कठिन है। जैसा कि प्रोफेसर जोड ने कहा है, "संक्षेप में, समाजवाद एक ऐसा टोप है, जिसका रूप ही लोप हो गया है, कारण हर कोई उसे पहनता है।"

हम सर टॉमस मोर के 'आदर्श समाजवाद', इन्कास के 'धार्मिक समाजवाद' कॅनन किंगसले और रेवरेण्ड मॉरिस के 'ईसाई समाजवाद' कार्ल मार्क्स के 'वैज्ञानिक समाजवाद' और सिडनी तथा बिएट्रिस वेब के 'वैधानिक समाजवाद' के विषय में साहित्य पढ़ते हैं। किंतु बुनि-यादी तौर पर समाजवाद की कल्पना जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा प्रति-पादित व्यक्तिवादी दर्शन की कुछ अर्थों में एक प्रतिक्रिया ही है। मिल का कहना था कि "राज्य को लोगों को उस समय तक अकेला छोड़ देना चाहिए जबतक कि ये लोग दूसरे लोगों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते।" बेन्थम का मानना था कि हरेक आदमी अपने हितों की देख-भाल स्वयं कर सकता है और यह कि "सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति सारे समाज की भलाई के साथ जुड़ी हुई है।" समाजवादी विचारक यद्यपि अनेक महत्वपूर्ण बातों में एक दूसरे से असहमत हैं, तथापि उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का उग्र विरोध किया और न्यायोचित व्यवस्था कायम करने के अनेक उपाय सुझाये हैं।

सैंट साइमन विशाल संगठन और योजना में दृढ़ विश्वास रखते थे। उनको आशा थी कि विज्ञान और तकनीकी शास्त्र का पूरा उपयोग कर के समाज के कल्याण के लिए समाजवादी संगठन की स्थापना की जा सकती है। सैंट साइमन की मान्यताओं की तुलना में चार्ल्स फूरिये की यह दृढ़ मान्यता थी कि केवल कृषि-प्रधान सामाजिक संगठन के द्वारा 'उत्तम जीवन' का सपना साकार हो सकता है। रॉबर्ट ओवेन ने कारखानों की प्रणाली और उससे उत्पन्न होनेवाली गंदी बस्तियों की भीषणताओं के विरुद्ध विद्रोह किया और 'सहकारी बस्तियों' के रूप में कृषि और उद्योग दोनों के संतुलित विकास की हिमायत की है। लुई ब्लां का ख्याल था कि आम मताधिकार द्वारा राज्य प्रगति और कल्याण का साधन बन सकता है। उन्हें आशा थी कि "औद्योगिक प्रवृत्ति और कृषि में मेल बिठाया जा सकता है।" फर्डिनेण्ड लासाल चाहते थे कि मजदूर शोषण का अंत करने के लिए अपना उत्पादन स्वयं करें। सिसमॉण्डी चाहते थे कि उत्पादक साधनों के क्षेत्र में वास्तविक उपभोक्ताओं के मध्य संपत्ति का व्यापक वितरण हो और राज्य छोटे उत्पादकों और किसान भूस्वामियों के हित में आर्थिक परिस्थितियों का नियमन करे। प्रूढ़ों का दृढ़ विश्वास था कि 'क्षेत्रीयता' के सिद्धांतों के आधार पर समाजवादी समाज की स्थापना की जा सकती है, जहां छोटे-छोटे समूह आर्थिक प्रवृत्तियों को चलाते हैं।

व्यक्ति और राज्य

जहां अनेक सामाजिक और राजनीतिक विचारकों ने सुख और समृद्धि की प्राप्ति के लिए व्यक्ति और छोटे समूहों की स्वतंत्रता की हिमायत की है, वहां हॉब्स ने राज्य को 'लोगों की वफादारी का एकमात्र केंद्र' बनाने की कोशिश की है। रूसो ने कहा है कि जहां प्रत्येक नागरिक को अपने तमाम साथी नागरिकों से पूर्णतया स्वतंत्र होना चाहिए, वहां उसे स्वयं 'पूर्णतया राज्य के आधीन' होना चाहिए। यह राज्य के सर्वग्राही प्रभुत्व का ही नतीजा था कि फ्रांस की राज्यक्रांति का जन्म हुआ। बाद में कार्ल मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य' के आधार पर अपने साम्यवाद के दर्शन

का प्रतिपादन किया। उन्हें हीगल की विचारधारा से पथ-प्रदर्शन मिला, जो यह मानते थे कि विकास की हर मंजिल विरोधी तत्वों के संघर्ष के फलस्वरूप सिद्ध होती है और अंत में उनमें समन्वय होता है। 'वर्ग-संघर्ष' का यह बुनियादी दर्शन ही आधुनिक साम्यवाद का सार-तत्व है। मार्क्स ने ऐसे समाज की कल्पना की है जिसमें "विकासशील सामाजिक शक्तियां अनेक संकटों के भीतर से विकसित और परिपक्व होती हैं और अंत में संकट चरम-सीमा को पहुंच जाता है और भारी विनाश और उथल-पुथल के भीतर से नई समाज-व्यवस्था का जन्म होता है।" उन्होंने अन्य प्रकार की शक्तियों के विपरीत आर्थिक शक्तियों पर बहुत अधिक जोर दिया है।

बर्न्सटाइन 'संशोधनवाद' के जनक माने जाते हैं। वह चाहते थे कि समाजवाद क्रांतिकारी नहीं, 'विकासशील' होना चाहिए। समाजवादी दर्शन के इस पहलू का इंग्लैंड के फेबियन लोगों ने अधिक पूरी तरह विकास किया। उन्होंने 'क्रमिकवाद' के सिद्धांत की पुष्टि की। वेब-बंधुओं ने कहा कि "अनिवार्य सामाजिक न्यूनतम स्तर और साधनों के सामाजिक नियंत्रण द्वारा, जिसमें उत्तरोत्तर करारोपण का तरीका भी शामिल है, गरीबी का अंत किया जाय।" जार्ज बर्नार्ड शॉ का यह सुदृढ़ विश्वास था कि 'आय की समानता' के जरिये समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। श्री शॉ कहते हैं कि 'अवसर की समानता' असंभव है। "समाजवाद का अर्थ है आय की समानता, और कुछ नहीं, अन्य बातें केवल उसकी अवस्थाएं अथवा उसके परिणाम हैं।'

समाजवाद के प्रकार

समाजवाद के और भी अनेक प्रकार हैं, जिनकी विभिन्न व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों ने हिमायत की है। 'संघीय समाजवाद' व्यावसायिक लोक-तंत्र पर आधारित है, जिसमें श्रमिक मजदूर-संघों के द्वारा उद्योग-प्रबंध का प्रभावशाली रूप में संचालन करते हैं। जहां संघीय समाजवादी मजदूरों के शांतिमय संगठनों में विश्वास करते हैं, वहां उग्र संगठनवादी (सिंडिकेलिस्ट) आम हड़ताल के द्वारा हिंसक और क्रांतिकारी

तरीकों की हिमायत करते हैं। प्रिंस क्रोपॉटकिन जैसे अराजकतावादी शासन-रहित 'स्वतंत्र समाज' की कल्पना करते हैं, जिसमें कानून के अनुसरण अथवा किसी सत्ता की आज्ञा के द्वारा नहीं, बल्कि 'विभिन्न समूहों के मध्य स्वीकृत स्वतंत्र समझौतों' के द्वारा शांति स्थापित की जाती है। हमारे अपने जमाने में, हमने हिटलर के 'राष्ट्रीय समाजवाद' अथवा नाजीवाद और मुसोलिनी के 'निगम-राज्य' अथवा फासिस्टवाद के बारे में पढ़ा है। हमने इण्डोनेसिया के राष्ट्रपति श्री सुकर्ण के 'इन्डोनेसियाई' समाजवाद के विषय में भी पढ़ा है, जो 'निर्देशित लोकतंत्र' में विश्वास करते हैं और यह मानते हैं कि 'तमाम एशियाई समस्याएं पश्चिमी विधियों के द्वारा हल नहीं की जा सकतीं।' इण्डोनेसिया के आजीवन राष्ट्रपति नियुक्त किये जाने के शीघ्र बाद ही डा० सुकर्ण ने वचन दिया कि वह देश को 'ऐसा आदर्श समाजवादी राष्ट्र बनाने की चेष्टा करेंगे, जो सामाजिक और आर्थिक वर्ग-विषमताओं को समाप्त करने का आश्वासन देता है।" राष्ट्रपति नासिर ने अपने हितकारी नेतृत्व में अरब नमूने का समाजवाद विकसित किया है। हाल में स्वतंत्र हुए अफ्रीकी देश एक नई किस्म के 'अफ्रीकी समाजवाद' की रचना कर रहे हैं। घाना के डा० क्वामे एन्क्रूमा 'प्रगति के समाजवादी पथ पर' अग्रसर होकर चाहते हैं कि सब लोगों के लिए 'यथासंभव उच्चतम स्तर पर पूरा रोजगार, अच्छे मकान तथा शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए समान अवसर सुलभ हों।' टांगानिका के राष्ट्रपति श्री न्येरेरे की समाजवाद की व्याख्या यह है कि वह 'एक मानसिक दृष्टिकोण' है, 'किसी निर्धारित राजनीतिक ढांचे का कठोर अनुसरण नहीं।' उनके अनुसार अफ्रीकी समाजवाद की नींव और उद्देश्य 'कुटुंब का विस्तार है, जिसमें अंततः सारे मानव-समाज का समावेश होगा।' स्वतंत्र अल्जीरिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री अहमद बेग बेल्ला ने कहा था कि "समाजवाद मुख्यतः विशेषाधिकारों को समाप्त करना चाहता है।"

'मानव का भाई-चारा'

यद्यपि समाजवाद की कल्पना के विषय में विभिन्न व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के विभिन्न विचार रहे है, किंतु कम-ज्यादा सभी का यह खयाल रहा है कि समाजवादी समाज को 'मानव भाई-चारे' की स्थापना करनी चाहिए और उसका यह विश्वास है कि 'प्रत्येक मनुष्य को सुख और जीवन को मूल्य प्रदान करनेवाले साधन प्राप्त करने का समान अधिकार है।' जॉन स्ट्रेची ने लोकतंत्री समाजवाद के ध्येय को 'सामाजिक उद्देश्यों' से संबंधित विभिन्न प्रश्नों में निहित 'श्रद्धा का कार्य' कहा है। प्रोफेसर पीगू समाजवाद को 'एक छोटे शासनकर्त्ता गुट' के लाभ के लिए नहीं, बल्कि 'सारे समाज के हित की योजना' कहते हैं। समाज का यह उद्देश्य भी बताया गया है कि वह 'मानव दृष्टिकोण और संबंधों में परिवर्तन द्वारा आर्थिक संघर्ष की समाप्ति' करना चाहता है।' श्री जयप्रकाशनारायण कहते हैं कि "जीवन का समाजवादी तरीका आम लोगों के परिश्रम से उत्पन्न अच्छी वस्तुओं को मिलकर उपभोग करने का एक तरीका है।" नेहरूजी की राय थी कि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का अर्थ 'सार्वजनिक हित में नियंत्रित उत्पादन और वितरण' होगा। महात्मा गांधी ने सर्वोदय का आदर्श प्रस्तुत किया, जो समाज के सभी वर्गों—विशेषकर समाज के निम्नतम और दरिद्रतम वर्गों—के भौतिक और नैतिक दोनों हित सिद्ध करना चाहता है।

भारत में राष्ट्रीय नेताओं ने आधुनिक विचारधाराओं और प्राचीन परंपराओं के आधार पर समाजवाद की कल्पना का विकास किया है। अगले अध्याय में भारतीय संविधान और पंचवर्षीय योजनाओं में समाविष्ट समाजवाद की सामान्य रूपरेखा देने की कोशिश की जायगी।

२

भारतीय आयोजन में समाजवाद

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जब से अपने आवड़ी-अधिवेशन में, जनवरी १९५५ में, 'समाजवादी ढंग के समाज' का प्रस्ताव स्वीकार किया है, तभी से आयोजित आर्थिक विकास के द्वारा इस देश में समाजवादी लोकतंत्र का लक्ष्य हासिल करने की सच्ची अभिलाषा रही है। वास्तव में 'समाजवादी ढंग' शब्द का सबसे पहले भारतीय संसद द्वारा सन् १९५४ में स्वीकृत एक गैर-सरकारी प्रस्ताव में प्रयोग किया गया था। यद्यपि इससे पहले कांग्रेस ने 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग नहीं किया, फिर भी 'बुनियादी अधिकारों' संबंधी सुप्रसिद्ध प्रस्ताव में समाजवाद की मोटी बातों का उल्लेख हुआ था। यह प्रस्ताव सन् १९३१ के कराची-अधिवेशन में स्वयं महात्मा गांधी ने पेश किया था। उसमें यह स्पष्ट कहा गया था कि "आम जनता के शोषण का अंत करने के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता में करोड़ों क्षुधा-पीड़ित व्यक्तियों की वास्तविक आर्थिक स्वतंत्रता का भी समावेश होना चाहिए।" कांग्रेस ने सन् १९३८ में श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय आयोजन समिति भी नियुक्त की थी। इस समिति ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था को समाजवादी मोड़ देने का मसविदा तैयार करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण काम किया। आर्थिक कार्यक्रम समिति की रिपोर्ट दिसम्बर १९४८ में कांग्रेस के जयपुर-अधिवेशन में पेश की गई। इस रिपोर्ट में भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि स्वतंत्र भारत का समता-मूलक आधार पर विकास होना चाहिए। कांग्रेस की कृषि-व्यवस्था-सुधार समिति ने प्रोफेसर जे० सी० कुमारप्पा की अध्यक्षता में सन् १९४९ में अपनी रिपोर्ट में

"जमींदारी प्रथाओं' को समाप्त करने की मांग की और 'विभिन्न किस्म की खेती में विभिन्न मात्रा में सहकारिता को अपनाने की' सिफारिश की।

जाति और वर्ग-रहित समाज

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश का योजनाबद्ध आर्थिक विकास मुख्यत: भारतीय संविधान के राज्यनीति निर्देशक सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। संविधान यह निर्देश देता है कि "राज्य लोगों के हित के लिए यथासंभव ऐसी समाज-व्यवस्था कायम करने और उसे संरक्षण देने की कोशिश करेगा, जिसमें राष्ट्र-जीवन की सभी संस्थाओं में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को महत्व दिया जायगा।" उसमें कहा गया है कि सभी नागरिकों को "रोजगार के पर्याप्त साधन पाने का अधिकार होगा।" और यह कि "समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व और नियंत्रण का वितरण सामान्य हित की सर्वोत्तम पूर्ति की दृष्टि से किया जायगा।" निर्देशक सिद्धांत राज्य को यह निर्देश भी देते हैं कि वह इसका ध्यान रखे कि "आर्थिक प्रणाली के संचालन के फलस्वरूप संपत्ति और उत्पादन के साधनों का केंद्रीयकरण आम हितों के विपरीत न होने पाये।"

संविधान में सुरक्षित इन सिद्धांतों ने प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रकाशन के समय से ही भारतीय आयोग का पथ-प्रदर्शन किया है। दूसरी योजना में कहा गया है कि "समाजवादी ढंग के समाज की दिशा में आगे बढ़ने की रूपरेखा निर्धारित करने की सर्वोत्तम कसौटी 'निजी लाभ' की नहीं, बल्कि 'सामाजिक लाभ' की होनी चाहिए।" "आर्थिक विकास के लाभ समाज के अपेक्षाकृत अल्प सुविधा-भोगी वर्ग को अधिक-से-अधिक मात्रा में मिलने चाहिए और आय, संपत्ति और आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण में उत्तरोत्तर कमी होनी चाहिए।" तीसरी योजना का लक्ष्य जाति, वर्ग अथवा सुविधा-भोगी वर्ग-रहित समाज की स्थापना करना है, जो "समाज के हरेक वर्ग और देश के सभी भागों को विकास करने और राष्ट्रीय उत्कर्ष में योग देने का पूरा अवसर देगा।"

समाजवाद साम्यवाद नहीं है

भारतीय आयोजन में कल्पित समाजवादी समाज की विस्तृत रूप-रेखा देने का प्रयास करने के पहले नकारात्मक रूप में यह बताना वांछनीय होगा कि समाजवाद क्या नहीं है। प्रथम, बिना किसी संदेह के यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि भारत में समाजवाद वह साम्यवाद नहीं है, जिस पर रूस, चीन और पूर्वी यूरोप के देशों में अमल किया जा रहा है। इस देश के कुछ पढ़े-लिखे लोग यह मानने की भूल करते हैं कि नियोजित विकास साम्यवादी ढंग के समाजवाद की दिशा में आगे खिसकना है। यह सर्वथा ग़लत खयाल है। स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने बार-बार यह कहा है कि कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवाद के सिद्धांत आज की गतिशील दुनिया के उपयुक्त नहीं हैं। नेहरूजी ने लिखा है, "मार्क्सवादी अर्थशास्त्र अनेक तरह से पुराना पड़ गया है" और निश्चित रूप से उसने 'हिंसक मार्ग के साथ' अपना रिश्ता जोड़ लिया है। "वह समझा-बुझाकर अथवा शांतिमय लोकतंत्री दबाव डाल कर परिवर्तन नहीं लाना चाहता, बल्कि बल प्रयोग द्वारा और वस्तुतः विनाश और उन्मूलन के द्वारा परिवर्तन लाना चाहता है।" ब्राजील के एक साप्ताहिक समाचार-पत्र में अपने एक लेख में नेहरूजी ने अत्यंत कड़े शब्दों में हिंसक दृष्टिकोण की निंदा की थी। उन्होंने लिखा, "मैं इस तरीके को सर्वथा साम्राज्यवादी, अबुद्धिसंगत और असभ्यतापूर्ण मानता हूं, चाहे उसका व्यवहार धार्मिक, आर्थिक सिद्धांत अथवा अन्य किसी भी क्षेत्र में क्यों न किया जाय!"

आचार्य विनोबा ने स्पष्ट रूप में कहा है कि सर्वोदय की गांधीवादी विचारधारा 'हिंसारहित साम्यवाद' नहीं है। वह कहते हैं, "असलियत यह है ये दो विचारधाराएं एक-दूसरे के साथ नहीं मिल सकतीं, उनके बीच बुनियादी अंतर है।"

साधन शुद्धि

गांधीजी ने उच्च उद्देश्यों की सिद्धि के लिए साधनों की शुद्धता पर

बहुत जोर दिया था और कहा था, "भले ही रूस ने अनेक सफलताएं हासिल की हों, किंतु उसका कार्य टिकेगा नहीं, जबतक कि उसके साधन भी शुद्ध नहीं होंगे।" इसलिए उनका मानना था कि साम्यवाद भारतीय राष्ट्र की प्रतिमा के अनुकूल नहीं है। उन्होंने साफ-साफ कहा है कि "साम्यवाद इस देश की भूमि में फूले-फलेगा नहीं।" गांधीजी ने कहा है, "समाजवाद स्फटिक के समान पवित्र है और इसलिए उसे प्राप्त करने के लिए स्फटिक के समान ही शुद्ध साधन चाहिए।" विश्व बैंक के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री यूजेन ब्लॅक ने भी जोर दिया है कि "आर्थिक विकास की प्राप्ति के साधन स्वतः विकास जितने ही महत्वपूर्ण हैं।" नेहरूजी का यह यकीन था कि "कालांतर में लोकतंत्री और शांतिमय तरीका समय की दृष्टि से अधिक सफल होता है और अंतिम परिणाम की दृष्टि से तो कहीं अधिक सफल होता है।" इसलिए भारत की लोकतंत्री जीवन के आदर्शों और शांतिमय तरीकों में गहरी निष्ठा है। वास्तव में आधुनिक जगत में वह सबसे बड़ा लोकतंत्र है, व्यक्ति की प्रतिष्ठा में उसे गहरी श्रद्धा है और यह प्रश्न ही पैदा नहीं हो सकता कि वह तानाशाही की ओर खिसकेगा।

'मुक्त उद्योग' नहीं

दूसरे, हमारे दिमाग में यह दर्पण के समान स्पष्ट होना चाहिए कि भारतीय आयोजन में समाजवाद का अर्थ 'निजी लाभ' और 'मुक्त उद्योग' पर आधारित अर्थ-व्यवस्था नहीं हो सकता। पश्चिम के कुछ अत्यधिक विकसित देशों में पूंजीवाद राजकीय अहस्तक्षेप के सिद्धांतों से काफी हट चुका है और अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी और जापान की आधुनिक अर्थ-व्यवस्थाओं में समाजवाद का काफी मिश्रण हुआ है। ब्रिटिश व्यवसायियों का यह विश्वास निर्बल पड़ रहा है कि "मुक्त उद्योग अपनी औद्योगिक समस्याओं को हल कर सकेगा।" जैसा कि श्री आर्थर लुइस ने कहा है, "केवल पागलपन की सीमा पर रहनेवालों के अलावा और कोई आर्थिक क्षेत्र में राजकीय अहस्तक्षेप की बात में विश्वास नहीं करता।" विदेशी मामलों की पत्रिका में (जुलाई, १९५८ में) प्रोफेसर

गेलब्रेथ ने लिखा है, "भारत की अर्थ-व्यवस्था पर अमरीका की अर्थ-व्यवस्था की अपेक्षा राजकीय पथ-प्रदर्शन और निर्देशन का कम प्रभाव है; हमारी कृषि-व्यवस्था पर कहीं अधिक नियंत्रण किया जा सकता है, उसपर राज्य का कहीं अधिक व्यापक नियंत्रण है। ····कुल मिलाकर इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि हमारी अर्थ-व्यवस्था कहीं अधिक नियंत्रण-क्षम और नियंत्रित है।" उसी पत्रिका में श्री विलियम लॉकवुड ने कहा है, "जापान कट्टरपंथी नेताओं की अधीनता में भी समाजवाद का जितना प्रचार करता है, उससे अधिक उसपर अमल करता है।"

असल में, मुक्त-उद्योग की प्रणाली इस गलत मान्यता पर खड़ी है कि सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की तुष्टि सारे समाज के समग्र कल्याण के सदृश है। प्रचलित शताब्दि में आर्थिक विकास का इतिहास इस कपोल-कल्पना का खंडन कर चुका है और उसे प्राणहीन वस्तु की भांति मृत समझ लिया जाना चाहिए। भारत, मध्य मार्ग पर चलता हुआ, मुक्त-उद्योग और तानाशाही अर्थतंत्र के दोनों एकांतिक मार्गों से बचने की कोशिश कर रहा है। इसलिए भारत में आर्थिक मामलों में राजकीय अहस्तक्षेप के सिद्धांत का पुनर्जीवन न केवल अविवेकपूर्ण और अ-लोकप्रिय होगा, बल्कि आम जनता के महत्वपूर्ण आर्थिक हितों के लिए नुकसानदेह होगा।

समग्र राष्ट्रीयकरण नहीं

तीसरे, यह भी असंदिग्ध रूप से कहना होगा कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था में समाजवाद का अर्थ समग्र राष्ट्रीयकरण नहीं है। 'औद्योगिक नीति विषयक प्रस्ताव' कहता है कि कुछ बुनियादी और मूल के उद्योगों, जैसे, रक्षा-सामग्री, लोहा और इस्पात, भारी संयंत्र और मशीनरी, कोयला, रेल, जहाज-निर्माण और खनिजों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा। अन्य कुछ उद्योग, जैसे, एल्युमीनियम, अलोह धातुएं, मशीनी-औजार, रासायनिक खाद, और नकली रबड़ उद्योग राजकीय और निजी क्षेत्रों में चल सकते हैं। इसके अलावा अनेक उपभोक्ता-उद्योग बच रहते हैं, जो राष्ट्रीय ढांचे के आयोजन की मर्यादा में पूर्णतया निजी क्षेत्र में

रहने दिये गए हैं। नेहरुजी ने बार-बार कहा था कि खास महत्व की बात है 'सामाजिक नियंत्रण' न कि 'संपूर्ण राष्ट्रीयकरण'। दूसरे शब्दों में भारत-सरकार 'विवेकयुक्त समाजीकरण' की नीति पर चलती रही है। जैसा कि प्रोफेसर लुइस ने कहा है, "आर्थिक जीवन में सरकार के सामने समस्या यह है कि बहुत अधिक नियोजन और बहुत कम नियोजन और बहुत अधिक राष्ट्रीयकरण और बहुत कम राष्ट्रीयकरण के मध्य सही रास्ता मालूम करे।"

दूसरे विश्वयुद्ध के समय से ब्रिटेन की आर्थिक नीति इस बात पर जोर देती रही है कि "प्रत्यक्ष नियंत्रण अथवा राजकीय स्वामित्व की अपेक्षा निजी उद्योगों पर राज्य को केवल देखभाल का कार्य करना चाहिए।" आधुनिक जगत में, हमें राज्य के केंद्रित नियंत्रण और समाज के हाथों में शक्ति के विकेंद्रीयकरण के बीच संतुलन रखना होगा। संक्षेप में, नियोजन की आवश्यकता है, किसी प्रकार की कठोर व्यवस्था की नहीं। श्री एच० एस० क्रासमैन के अनुसार, "उद्योगों पर अत्यधिक राजकीय स्वामित्व से राज्य की नौकरशाही के हाथों शक्ति का ऐसा केंद्रीयकरण हो जाता है, जो हमारी स्वतंत्रता के लिए खतरा पैदा करता है।"

सुनहरा मध्यम मार्ग

भारत योजनाबद्ध आर्थिक विकास के द्वारा मुक्त-उद्योग और नियंत्रित समाजवाद के बीच सुनहरा मध्यम मार्ग तलाश करने की कोशिश कर रहा है। जहां राज्य को गैर जरूरी निजी उद्योगों को हस्तगत करने में अपने दुर्लभ साधनों को बर्बाद नहीं करना चाहिए, वहां सरकार के सामने यह रास्ता भी खुला है कि वह विभिन्न संसदीय कानूनों के मातहत समाज के व्यापक हितों में निजी उद्योगों का प्रभावशाली नियंत्रण और नियमन करे। किंतु यह आवश्यक है कि "बुनियादी और सुरक्षा की दृष्टि से सभी महत्वपूर्ण उद्योगों और सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं का संचालन राज्य करे।" यद्यपि गांधीजी "बहु-संख्यक उपभोक्ता उद्योगों को विकेंद्रित ग्रामीण क्षेत्र में रहने देने के पक्ष में थे,

तथापि उनकी राय थी कि मूल उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व होना चाहिए।"

अगर निजी क्षेत्र के किसी देशी या विदेशी उद्योग का सुरक्षा की दृष्टि से राज्य राष्ट्रीयकरण आवश्यक समझे तो भारत सरकार के लिए यह अनिवार्य है कि उसके मालिक को मुनासिब मुआवज़ा अदा करे। लोकसभा में संविधान (चतुर्थ) संशोधन विधेयक पर बोलते हुए नेहरूजी ने कहा था, "भारत सरकार बिना मुआवजा दिये किसी की संपत्ति को हस्तगत नहीं करना चाहती।.......विदेशी पूंजी और विनियोजनों को हस्तगत करने की चर्चाओं से मुझे आश्चर्य हुआ है। अगर देश विदेशियों की संपत्ति के साथ खिलवाड़ करने लगे तो वह दुनिया में बदनाम हो जायगा।"

लोकतंत्री ढांचा

इसके अलावा, भारत में समाजवाद तानाशाही नियंत्रण के मुकाबले लोकतंत्र के सिद्धांतों पर आधारित है। संविधान के अनुसार, भारत 'सार्वभौम लोकतंत्री गणराज्य' है, जिसे अपने तमाम नागरिकों के लिए "सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और पूजा की स्वतंत्रता तथा दर्जे और अवसर की समानता सुलभ करनी चाहिए और व्यक्ति की प्रतिष्ठा और राष्ट्र की एकता का आश्वासन देते हुए उनमें हर प्रकार के भाईचारे को बढ़ावा देना चाहिए।"

भारत ही दुनिया में शायद एकमात्र देश है, जिसने लोकतंत्री ढांचे के अंतर्गत व्यापक आर्थिक नियोजन के द्वारा समाजवादी समाज की स्थापना का प्रयोग शुरू किया है। अमरीका और ब्रिटेन जैसे पश्चिमी लोकतंत्रों में राष्ट्रपति रूजवेल्ट की 'नई नीति' अथवा लार्ड बेवरिज द्वारा प्रतिपादित 'सामाजिक सुरक्षा की योजना' के रूप में हम कह सकते हैं कि आंशिक नियोजन का आश्रय लिया गया है। भारत में समाजवादी और लोकतंत्री नियोजन का अबतक का अनुभव काफी संतोषजनक रहा है और यह जानकर संतोष होता है कि यह महत्वपूर्ण प्रयोग एशिया और अफ्रीका के नव-स्वतंत्र देशों के लिए सहायक साबित हो रहा है।

विकेंद्रीयकरण

किंतु यह याद रखना आवश्यक है कि भारत अधिकांश पश्चिमी देशों में प्रवर्तित अत्यधिक केंद्रित ढंग के लोकतंत्र का अनुसरण करने का कोई इरादा नहीं रखता। अति प्राचीनकाल से भारत में पंचायती ढंग का विकेंद्रित लोकतंत्र प्रचलित रहा है। राजाओं के वंश-के-वंश मिट गए, एक क्रांति के बाद दूसरी क्रांति हुई, किंतु ग्राम-समुदाय ज्यों-के-त्यों बने रहे। ग्राम-समाज का संगठन अपने-आप में एक छोटा-सा पृथक राज्य बन कर रहा। 'तमाम क्रांतियों और परिवर्तनों के बावजूद अन्य किसी कारण की अपेक्षा उसने भारत के लोगों के अस्तित्व को कायम रखा है।'

भारतीय लोकतंत्र युग-युगों से समाज के भीतर सामूहिक जीवन पर टिका रहा है, जहां सर्व-सम्मत या करीब-करीब सर्व-सम्मत फैसले किये जाते हैं। जहां भारत ने कम-ज्यादा ब्रिटिश नमूने के संसदीय लोकतंत्र को अपने संविधान में स्वीकार किया है, वहां निर्देशक सिद्धांत राज्य को आदेश देते हैं कि 'ग्राम पंचायतों का संगठन किया जाय और उन्हें ऐसी सत्ता और अधिकार सौंपे जायं जिससे वे शासन का इकाईयों के रूप में काम कर सकें।' इस निर्देशक सिद्धांत की पूर्ति की दृष्टि से करीब-करीब सभी राज्य-सरकारों ने अपने-अपने क्षेत्रों में 'लोकतंत्री विकेंद्रीयकरण' अथवा पंचायती-राज की स्थापना की है, ताकि भारत के देहातों में बहु-संख्यक ग्राम-समाजों को व्यापक अधिकार और कर्तव्य सौंपे जा सकें। प्रशासन के इस साहसिक विकेंद्रीयकरण को प्राचीन व्यवस्था का पुनर्जीवन अथवा कबीलावाद नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि यह उस समृद्ध अनुभव की परिपूर्ति है, जिसे भारत ने सदियों के दौरान में प्राप्त किया है।

पश्चिम के अनेक राजनीतिक और सामाजिक विचारकों ने यह नतीजा निकाला है कि यदि, सामाजिक प्रवृत्ति में मनुष्य की श्रद्धा को फिर से जगाना है तो श्री जोड के अनुसार "राज्य के टुकड़े करके

उसके कार्यों का विभाजन करना चाहिए।" प्रोफेसर कोल लिखते हैं, "लोकतंत्र केंद्रीयकरण का विरोधी है; कारण, वह एक ऐसी भावना है, जो जहां कहीं सामूहिक इच्छा को अभिव्यक्त करने की जरूरत होती है वहीं अपने-आपको तत्काल और स्थानीय तौर पर अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता चाहती है। अगर उसे किसी एक केंद्रीय धारा में प्रवाहित करने की कोशिश की जायगी तो उसकी स्वयं स्फूर्ति नष्ट हो जायगी और वह अवास्तविक हो जायगी।" ऑल्डस हक्सले भी कहते हैं, "श्रेष्ठतर समाज का राजनीतिक रास्ता विकेंद्रीयकरण और उत्तरदायी स्वशासन का रास्ता है। "प्रोफेसर लास्की विकेंद्रीयकरण की हिमायत करते हैं, कारण "एक केंद्रित राज्य में आज्ञा-पालन क्वचित् ही रचनात्मक होता है, वह यांत्रिक और जड़ हो जाता है।" श्री लूइस ममफोर्ड "खुले क्षेत्र में छोटे, संतुलित समाज कायम करने" की सिफारिश करते हैं, क्योंकि ये समाज सच्चे और सशक्त लोकतंत्र के योग्य प्रशिक्षण केंद्र होते हैं। तानाशाही देशों में भी अनुभव से सिद्ध हुआ है कि केंद्रीयकरण स्थानीय पहल को कुंठित करता है और सूचनाओं की ईकाइयों और केंद्र के मध्य आदान-प्रदान में अपव्यय होता है। गांधीजी ने इसलिए हमेशा यह माना था कि "केंद्र में बीस आदमी इकट्ठे बैठकर सच्चे लोकतंत्र को नहीं चला सकते; उसे तो हर गांव के लोगों को नीचे से चलाना होगा।"

किंतु यह ध्यान में रखना होगा कि आधुनिक दुनिया में केंद्रीयकरण और विकेंद्रीयकरण के मध्य एकांतिक रुख अपनाना उचित नहीं है। हमें अनिवार्यत: मध्यम मार्ग खोजना होगा और केंद्रीय पथ-प्रदर्शन और निर्देशन के साथ विकास के विभिन्न कार्यक्रमों पर विकेंद्रित अमल करना होगा। इसलिए इन दो कल्पनाओं को असंगत नहीं समझा जाना चाहिए। बुद्धिमानी की बात यह होगी कि राष्ट्रीय स्तर पर बुनियादी नीतियों का निर्माण किया जाय और विस्तृत योजनाओं को स्थानीय स्तर पर कार्यान्वित किया जाय और दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जाय। नियोजन और प्रशासन की इस प्रणाली की तुलना 'एक वट वृक्ष से की जा सकती है, जो अपनी शाखाओं को फैला कर जमीन में रोप देता है

और उनसे तथा मूल धड़से दोनों—पोषण प्राप्त करता है।' ये शाखाएं जैसे बड़ी होंगी तो उनसे सरकार को पोषण देनेवाला साधन खड़ा होगा। गांवों और जिलों से योजनाएं और प्रस्ताव आयंगे, जिनमें क्षेत्र से संबंधित पहल की शक्तियां अधिक स्वतंत्रता पूर्वक गतिमान होंगी।

नैतिक और मानवी मूल्य

अंत में, भारत का समाजवाद केवल भौतिक समृद्धि-कल्याण की भाषा में ही विचार नहीं करता; वह जीवन के नैतिक और मानवी मूल्यों पर बहुत जोर देता है। तीसरी पंच-वर्षीय योजना यह सार्थक दावा करती है कि यद्यपि "नियोजन के लिए भौतिक साधनों का विनियोग करना होगा, किंतु उससे अधिक महत्वपूर्ण मानव विनियोग है। इसके लिए हर समय नैतिक, मानवी और आध्यात्मिक मूल्यों पर जोर देना होगा, जो आर्थिक प्रगति को सार्थक करते हैं।' प्रोफेसर टोयनबी कहते हैं कि "मनुष्य के नैतिक साधनों की पर्याप्तता या अपर्याप्तता से ही इसका निर्णय होगा कि मनुष्य के हाथों में जो व्यापक नई भौतिक शक्ति आई है उसका भले के लिए अथवा बुरे के लिए उपयोग होगा।" वह यह भी कहते हैं कि "भारतीय किसानों के जीवन के भौतिक मानदंडों को ऊंचा उठाना कोई भौतिकवादी लक्ष्य नहीं है; उसका प्रमुख आध्यात्मिक महत्व है, क्योंकि वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति को संभव बनानेवाली आवश्यक शक्ति है।" प्रोफेसर मालेनबॉ मानवी और अभौत्तिक आधारों को प्रभावशाली बनाने पर जोर देते हैं। श्री कोलिन क्लार्क मानते हैं कि "आर्थिक विकास के मुख्य तत्व भौतिक अर्थात् प्राकृतिक साधन और पूंजी विनियोग नहीं हैं, बल्कि मुख्य तत्व मानव है।"

नेहरूजी ने विज्ञान और तकनीकी शास्त्र के साथ आध्यात्मिकता को जोड़ने की आवश्यकता पर बार-बार जोर दिया था। उन्होंने कहा है, "आध्यात्मिक दृष्टिकोण आवश्यक और अच्छा है और मैं हमेशा इस विषय में गांधीजी से सहमत रहा हूं, शायद कल की बजाय आज पहले से भी ज्यादा; जबकि हमारी यांत्रिक सभ्यता को जिस आध्यात्मिक शून्यता का सामना करना पड़ रहा है, उसका उत्तर पाने की हम जरूरत अनुभव करते हैं।"

वह आगे लिखते हैं, "यह वास्तव में पूर्णतया समन्वित मानव की रचना करने की समस्या है' अर्थात् आयोजन और विकास की जो शुद्ध भौतिक मशीनरी खड़ी की जा रही है, उसके मुकाबले मानव का निर्माण करने के लिए आध्यात्मिक और नैतिक शक्ति का आश्रय लेने की समस्या है।" डा० श्वहाज़र ने कहा है, "यदि नैतिक आधार न हो तो सभ्यता ढह जायगी, भले ही अन्य दिशाओं में बलवान से बलवान प्रकार की रचनात्मक और बौद्धिक शक्तियां काम कर रही हों।" यही कारण है कि गांधीजी केवल जीवन के 'उच्चतर मानदंड' के लिए ही नहीं, बल्कि जीवन के 'श्रेष्ठतर मानदंड' के लिए योजना बनाना चाहते थे। सबसे अधिक अर्थों में अब आधुनिक दुनिया ने इस कथन की सचाई को समझ लिया है कि 'मनुष्य केवल रोटी पर जिंदा नहीं रहता' और यह अवर्णनीय दुखांत घटना होगी यदि भारत केवल भौतिक प्रगति और समृद्धि पर आधारित समाजवादी व्यवस्था की दिशा में वेग से दौड़ता जायगा।

३

उच्चतर उत्पादिता और कार्यकुशलता

यह बार-बार कहा गया है कि भारत की नियोजित अर्थ-व्यवस्था में जिस समाजवादी समाज की कल्पना की गई है, उसका कोई निश्चित कठोर स्वरूप नहीं समझा जाय। दूसरी पंच-वर्षीय योजना के अनुसार "वह किसी सिद्धांत अथवा वाद की चौखट में जकड़ा हुआ नहीं है।" हर देश को अपनी स्वयं की प्रतिभा, परंपराओं और परिस्थितियों के अनुसार अपने आर्थिक विकास का मार्ग अपनाना चाहिए। इसीलिए भारत सरकार और योजना आयोग गत दशाब्दि के दौरान विभिन्न आर्थिक समस्याओं के बारे में "व्यावहारिक" मार्ग खोजने की कोशिश करते आ रहे हैं और पंचवर्षीय योजनायों के अमल में लचीलापन रहा है। वास्तव में, परंपरागत पूंजीवादी व्यवस्था और 'संशोधित' साम्यवाद के बीच की विभाजक रेखा दिन-प्रतिदिन क्षीण और अस्पष्ट होती जा रही है। पश्चिमी लोकतंत्री देश अधिकाधिक मात्रा में सामाजिक लक्ष्यों की ओर बढ़ रहे हैं। प्रोफेसर गालब्रेथ के अनुसार यह बहुधा अनुभव नहीं किया जाता कि "भारत की समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की अपेक्षा अमरीका की बाजार अर्थ-व्यवस्था के अंतर्गत राजकीय उद्योगों का क्षेत्र अधिक विस्तृत है।" प्रोफेसर का कहना है कि जहां अमरीका में सरकार स्थूल राष्ट्रीय उत्पादन के २० प्रतिशत का पूरी तरह नियंत्रण और वितरण करती है, वहां भारत का यह तुलनात्मक अंक केवल १३-१४ प्रतिशत है। इसके विपरीत, सोवियत रूस अपनी नियोजित अर्थ-व्यवस्था की पद्धति में पूंजीवादी देशों की अनेक विधियों को आत्मसात कर रहा है। ख्रुश्चेव ने कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के सामने सोवियत कृषि और उद्योगों के पुनर्गठन के बारे में बोलते हुए यह अर्थसूचक बात कही थी कि "अगर जरूरी हो तो हमें पूंजीपतियों

से उनकी अच्छी और लाभदायक बातों की नकल करना सीखना चाहिए।" उन्होंने प्रश्न किया, "हम पूंजीपतियों की उन बातों को क्यों न अपनायें जो बुद्धि-संगत और आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हैं ?" इसलिए भारतीय आयोजकों का व्यावहारिक और लचीला दृष्टिकोण व्यावहारिक विचारों पर आधारित है।

बुनियादी रूपरेखा

भारत के राजनीतिक और आर्थिक विकास के कुछ विदेशी अध्येताओं को भारतीय आयोजन का व्यवहारवाद 'क्षोभजनक' प्रतीत हुआ है, जो विचित्र अस्पष्टता को जन्म देता है। किंतु यदि हमारी आयोजना का गहरा अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि इस देश में समाजवाद के विकास के लिए जो व्यापक सिद्धांत अपनाये गये हैं, वे काफी निश्चित और ठोस हैं। भारत में समाजवादी लोकतंत्र की स्थापना के लिए स्वीकृत दिशा-निर्देशों के बारे में कुछ भी भ्रमकारी या अस्पष्ट नहीं है। वे इस प्रकार हैं :

(१) उन्नत तकनीक और श्रेष्ठतर कार्य-कुशलता और निष्ठा के द्वारा कृषि और औद्योगिक उत्पादिता की रफ़्तार को तेज किया जाय।

(२) आय और संपत्ति की विषमताओं को कम किया जाय और आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण को रोका जाय।

(३) पूरे रोजगार, श्रेष्ठतर शैक्षणिक सुविधाओं और बुनियादी आवश्यकताओं की, विशेषकर समाज के दुर्बल अंगों के लिए, व्यवस्था करके सब नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान की जाय।

(४) जनसंख्या के सभी वर्गों के मध्य समान हित, साझेदारी और सामाजिक एकता की भावना उत्पन्न की जाय।

(५) गुटों से अलग रहने की नीति पर चलकर और पूर्ण निरस्त्रीकरण के लिए ठोस प्रयास करके अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्व-शांति के ध्येय को आगे बढ़ाया जाय।

प्रचुरता की अर्थव्यवस्था

उत्पादिता की रफ्तार तीव्रतर करने के प्रथम निर्देश के संबंध

में, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं ने शीघ्रगामी कृषि और औद्योगिक विकास की दिशा में व्यापक और संतुलित मार्ग अपनाने की कोशिश की है। राष्ट्रीय संपत्ति के अधिक उत्पादन के बिना समाजवादी समाज के निर्माण का वस्तुतः यह अर्थ होगा कि गरीबी का वितरण हो जाय। समाजवाद के अंदर वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धि बढ़ाने की दृष्टि से समाज की उत्पादक शक्तियों का अधिक कुशल और लाभदायक उपयोग संभव होना चाहिए। आर्थिक समानता के लिए ठोस प्रयत्न करने के साथ-साथ नेहरूजी के शब्दों में हमें 'प्रचुरता की अर्थव्यवस्था' कायम करने की कोशिश करनी चाहिए।

कृषि की उत्पादिता

कृषि उत्पादन के क्षेत्र में हमारा बुनियादी दृष्टिकोण यह रहा है कि प्रति एकड़ उपज बढ़ाने के लिए खेती के तरीकों को सघन और आधुनिक बनाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता पैदा की जाय। देश को अन्न के मामले में स्वावलंबी बनाने के लिए ही नहीं, बल्कि कपास, गन्ना, पटसन और तिलहन जैसी कुछ बुनियादी औद्योगिक कच्ची सामग्री की उपलब्धि की दृष्टि से भी कृषि का उत्पादन बढ़ना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए भारत की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में कृषि और उद्योगों का तुलनात्मक योग क्या हो सकता है, इस बारे में विवाद करना व्यर्थ होगा। ये दोनों क्षेत्र एक दूसरे पर घनिष्ट रूप से निर्भर हैं, और एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं और सहकारी आधारों पर कृषि-उद्योग मूलक समाज-व्यवस्था कायम करने के लिए दोनों का साथ-साथ विकास किया जाना चाहिए। जैसा कि डा० कुजनेट्स ने कहा है, "कृषि-क्षेत्र में प्रति श्रमिक उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि दुनिया के किसी बड़े क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति की आवश्यक शर्त है।" प्रोफेसर रोस्तोव का भी यह अर्थ-सूचक कथन है कि खेती की उत्पादिता शक्ति में वृद्धि करके और उत्पादन में तीव्र वृद्धि करके आधुनिक उद्योगों के लिए कार्यकारी पूंजी का खासा भाग प्राप्त किया जाना चाहिए। यह एक विचित्र स्थिति है कि यद्यपि भारत में इस समय प्रति एकड़ उपज दुनिया में

सब से कम है, किंतु देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रगतिशील किसानों ने प्रयोग करके इतनी उपज की है, जो दुनिया में सब से अधिक है। इसलिए विश्व बैंक मिशन की सन् १९५९ की रिपोर्ट के अनुसार "ऐसे जाने-बूझे तरीके हैं जो आसान हैं, किंतु गरीबी और अज्ञान के कारण जिन पर अमल नहीं किया जा सकता, उन पर समुचित अमल करके भारत में कृषि की उत्पादिता बढ़ाई जा सकती है।" योजना आयोग ने एक योजना तैयार की है, जिसके अनुसार प्रगतिशील किसानों द्वारा अपनाये जानेवाले उत्तम तरीकों को साधारण किसानों में प्रचारित किया जा सकेगा। प्रोफेसर रेडअवे लिखते हैं, "खेती के सुधरे तरीके अपनाने के लिए कुछ कार्यकारी या स्थायी पूंजी जरूरी हो सकती है, किंतु इस अतिरिक्त पूंजी के मुकाबले अतिरिक्त उत्पादन कहीं अधिक होगा और पूंजी की व्यवस्था की अपेक्षा समस्या का कठिन अंग यह होगा कि सुधरे हुए तरीकों का प्रभावशाली ढंग से किस प्रकार प्रसार किया जाय। इसलिए तीसरी पंचवर्षीय योजना में ग्राम-उत्पादन योजनाएं बनाने पर विशेष जोर दिया गया है, ताकि सिंचाई की सुविधाओं का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय, अच्छे किस्म के बीज, प्राकृतिक और रासायनिक खाद, सुधरे हुए कृषि औजार देकर नाना फसली क्षेत्रों को बढ़ाया जाय और मिट्टी तथा पानी का संचय करके भूमि का विकास किया जाय। इन ग्राम-योजनाओं में लाभ उठानेवालों के परंपरागत दायित्वों की पूर्ति के कार्यक्रमों का भी समावेश किया जाय, जिनके अभाव में ठोस कृषि प्रगति होना कठिन होगा।

सामुदायिक विकास

सामुदायिक विकास आंदोलन जो देश के करीब-करीब सभी राज्यों में पंचायती राज का रूप ले रहा है अब वास्तव में जन-आंदोलन बन जाना चाहिए और श्री टी० टी० कृष्णमाचारी के शब्दों में "उसका आधार आत्म सहायता और सहकारिता होना चाहिए और अपने जीवन-मान को ऊंचा उठाने के लिए लोगों की रचनात्मक शक्तियों का उपयोग किया जाना चाहिए।" ग्राम-विकास खंड और जिला पंचायतों की

स्थापना का मुख्य उद्देश्य भारत के देहातों में रहनेवाले किसान परिवारों के साधनों को वैज्ञानिक तरीकों पर उत्पादक कामों में नियोजित करना है। यदि ऐसा संगठित प्रयास निरंतर नहीं किया जायगा तो सामुदायिक-विकास-कार्यक्रम हमारे सीमित साधनों के लिए बोझ बन जायगा और अपनी उपयोगिता और गतिशीलता गंवा देगा। यह आंदोलन बिफल नहीं होना चाहिए, वह इस देश में लोकतंत्र और समाजवाद की रक्षा के लिए आवश्यक है। जैसा कि रिचर्ड पोस्टन ने कहा है, "भारत में इस प्रकार के समुदाय कायम करने की कोशिश न केवल भारत, बल्कि सारी दुनिया के लिए आशाजनक चिह्न है।"

कृषि-सुधार

भारत में कृषि-सुधार-कार्यक्रम का मुख्यतः बुनियादी उद्देश्य यह है कि बिचौलियों की समाप्ति, भू-स्वामित्व की सुरक्षा, लगान के वैज्ञानीकरण और छोटे भू-स्वामियों में सहकारी सिद्धांतों के प्रसारण द्वारा कृषि-उत्पादन को बढ़ाया जाय। इस पर जोर दिया गया है कि भूमि-सुधार की हर मंजिल की पूर्ति के साथ कृषि उत्पादन बढ़ाने और ग्राम-अर्थव्यवस्था में विविधता लाने के लिए किसानों को अधिक सहायता देना संभव हो जायगा।

भू-स्वामित्व की अधिकतम सीमा लागू करने का भी मुख्य उद्देश्य यह है कि असली खेती करनेवालों को खेती की जमीन का मालिक बनाया जाय और वे उत्पादन बढ़ाने में प्रत्यक्ष दिलचस्पी ले सकें। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि भू-स्वामित्व की अधिकतम सीमा लागू करने का अर्थ यह नहीं है कि ग्रामीण क्षेत्रों के कुटुंब अमुक सीमा से अधिक आय न कमा सकें। वास्तव में, जब योजना में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार भूमि फिर से बांट दी जायगी तो सभी किसानों को प्रति एकड़ उपज बढ़ाने की हर कोशिश करनी होगी। इसके अलावा योजना में कहा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर लघु ग्राम-उद्योगों और कुटीर उद्योगों की स्थापना की जाय, ताकि देहातों में खेतों, छोटे कारखानों और उद्योग केंद्रों का जाल बिछ जाय।

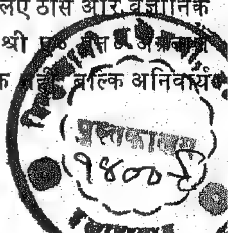
किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि शहरी भूमि अथवा संपत्ति से प्राप्त होनेवाली आय को सीमित करने का कोई प्रयास न किया जाय । समाजवादी समाज कायम करने की क्रिया राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में दाखिल होनी चाहिए और तीसरी पंचवर्षीय योजना ने ठीक तौर पर ही ऐसी अनेक दिशाएं सूचित की हैं, जिनमें शहरी आय को नियंत्रित और व्यवस्थित किया जा सकता है । उसमें कहा गया है, "प्रथम, सामाजिक नीति द्वारा पूंजीगत लाभ, सट्टे आदि से होनेवाली आय को सीमित किया जाय और राज्य उसका उचित भाग प्राप्त करे । दूसरे, कर-प्रणाली के विस्तार और सुधार द्वारा ऐसे कदम उठाये जांय कि इस तरह की आय पर पूरा कर वसूल किया जा सके; करों से बचने की कोशिश का सख्ती से सामना किया जाय और करों की चोरी के अवसर घटा कर कम-से-कम किये जांय ।"

सहकारी खेती

भारतीय कृषि को ठोस आधार प्रदान करने के लिए यह जरूरी है कि उत्पादन, उधारी, आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि, बिक्री और माल की तैयारी के क्षेत्रों में सहकारिता के सिद्धांतों पर अमल किया जाय । तीसरी पंचवर्षीय योजना ने यथासंभव शीघ्र सभी गांवों में सेवा सहकारी समितियां संगठित करने की आवश्यकता पर बल दिया है । किंतु इन संगठनों की आत्मनिर्भरता और कार्यकुशलता सुरक्षित करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया जाना चाहिए । गांवों के सेवाभावी नवयुवकों में से भली प्रकार प्रशिक्षित कार्यकर्ता जबतक उपलब्ध नहीं होंगे, तबतक बिचौलियों द्वारा गरीब किसानों के आर्थिक शोषण को समाप्त करने का बुनियादी लक्ष्य हासिल करना असंभव होगा । जब सेवा सहकारी समितियां ठोस आधार पर स्थापित हो जायंगी, तब सहकारी खेती का प्रयोग वांछनीय होगा, ताकि छोटे किसान वैज्ञानिक तरीके से खेती कर सकें । निःसंदेह, सम्मिलित खेती का आंदोलन पूर्णतया स्वेच्छिक होना चाहिए और सरकार को उसे अनिच्छुक किसानों पर थोपने की कोई कोशिश नहीं करनी चाहिए । तानाशाही हुकूमतों के अंतर्गत इस क्षेत्र में दबाव के फलस्वरूप ज्यादा प्रगति नहीं हुई

है। रूसी समाचार पत्र (प्रावदा) ने चीन में कम्यूनों की कार्य-पद्धति की बड़ी आलोचना की है और कहा है कि वह "हानिकारक और गलत रास्ते पर ले जानेवाली है।" इसके अलावा, भारत सरकार द्वारा स्वीकृत सहकार सम्मिलित खेती की योजना के अंतर्गत, किसानों को भूमि पर अपना स्वामित्व बनाये रखने की छूट होगी और वे कतिपय पूर्व निर्धारित शर्तों के अनुसार संयुक्त खेती से अलग हो सकेंगे। यदि किसान सहकारी खेती से होनेवाले आर्थिक लाभों के बारे में संतुष्ट होंगे तो वे निस्संदेह अपनी अंतिम इच्छा से इस प्रकार की खेती को अपनायंगे और उसके प्रयोग को जारी रखेंगे। तीसरी योजना की अवधि में विभिन्न राज्यों में ३२०० सहकारी फार्म नमूने के तौर पर कायम किये जायंगे। यदि इन नमूने की परियोजनाओं से किसानों को अपने भूमि साधनों को एकत्र करने की व्यावहारिक उपयोगिता का पता चल गया तो नमूने की परियोजनाओं की परिधि से बाहर अपने-आप बड़ी संख्या में सहकारी फार्म कायम हो जायंगे।

सहकारी खेती उन छोटे किसानों के लिए, जिनके पास सीमांत अथवा उप-सीमांत भूमि है, विशेष रूप से उपयुक्त है। मध्यम और बड़े किसान, जिनके पास जमीन की बड़ी ईकाइयां हैं और जो अपने परिवार के सब लोगों की श्रम-शक्ति और बैल-शक्ति का उनमें पूरा उपयोग कर सकते हैं, उन्हें अपनी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति के लिए सहकारी संगठन आकर्षक प्रतीत नहीं हो सकता है। किंतु आज की परिस्थितियों में छोटे किसान अपने साधनों को एकत्र करके ही सिंचाई की वर्तमान सुविधाओं और अन्य सुधरे हुए तरीकों का उपयोग करके अपनी उत्पादिता में वृद्धि कर सकते हैं। संयुक्त सहकारी फार्मों की स्थापना में सुविधा पहुंचाने की दृष्टि से राज्य को इन क्षेत्रों में भूमि की चकबंदी करने का काम तेजी से चलाना चाहिए। इस प्रकार सहकारी खेती भारत के बहु-संख्यक छोटे किसानों के लिए ठोस और वैज्ञानिक आर्थिक योजना है। श्री ए० एम० खुसरो और श्री ए० एन० अग्रवाल के अनुसार "सहकारी खेती की वकालत सैद्धांतिक नहीं बल्कि अनिवार्य है, और राजनीतिक नहीं बल्कि आर्थिक है।"



यह जान लेना दिलचस्प होगा कि गांधीजी ने भी भारत में सहकारी खेती के तरीकों का समर्थन किया था। उन्होंने १५ फरवरी १९४२ के 'हरिजन' में लिखा था, "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम तबतक खेती से पूरा लाभ नहीं उठा सकेंगे, जबतक कि हम सहकारी खेती को नहीं अपनायंगे। क्या यह बुद्धिसंगत नहीं कि गांव की भूमि को एक सौ टुकड़ों में बांट लेने के बजाय यह बेहतर होगा कि गांव के एक सौ परिवार सारी जमीन पर मिलकर खेती करें और उससे होनेवाली आय को आपस में बांट लें!" गांधीजी को आशा थी कि उनकी कल्पना की सहकारी खेती भूमि की शक्ल को बदल देगी और लोगों की गरीबी और बेकारी का अंत कर देगी। किंतु उन्होंने यह भी कहा था कि "यह तभी संभव होगा जब लोग एक दूसरे के मित्र बन जांय और एक परिवार की तरह रहने लगें।"

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था

उद्योगों के क्षेत्र में, भारतीय आयोजन 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' की नीति पर चल रहा है। वह स्थूल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करने के लिए राजकीय और निजी क्षेत्रों को विशिष्ट कार्य सौंपता है। राजकीय क्षेत्र से, विशेष कर बुनियादी और भारी उद्योगों के क्षेत्र में, यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपना पूरा और सापेक्ष विकास करे। वह न केवल उत्पादन में उच्चतर कार्य-कुशलता का परिचय दे, बल्कि श्रमिक वर्गों में सार्वजनिक उत्साह के गुप्त स्रोतों को भी उन्मुक्त करे। जैसा कि प्रोफेसर डरबिन ने कहा है, "समाजवादी आर्थिक संगठन को निजी लाभ के स्थान पर सामाजिक उद्देश्यों की प्रस्थापना करना चाहिए और सभी व्यक्तियों की व्यापक शक्तिशाली उत्पादक वृत्तियों को मुक्त करना और समान हित की बुद्धिसंगत और नैतिक भावना से उसे परिपुष्ट करना चाहिए।" प्रोफेसर माइर्डल "मनोवैज्ञानिक और आदर्श-प्रेरित" स्थिति उत्पन्न करने की आवश्यकता पर जोर देते हैं, जो "शीघ्र-गामी आर्थिक विकास में सहायक होती है।"

भारत में लोकतंत्रीय विकेंद्रीयकरण प्रचलित होने के साथ राजकीय

क्षेत्र केंद्र और राज्यों के औद्योगिक प्रयासों को चलाने के अलावा अब धीरे-धीरे ग्राम-पंचायतों के स्वामित्व और प्रबंध में चलनेवाले देहाती उद्योगों में भी सक्रिय होगा। इस प्रकार के सामुदायिक उद्योगों की स्थापना करके हम केवल मुट्ठीभर लोगों के ही नहीं, बल्कि सारे राष्ट्र के जीवन-मान को ऊंचा उठाने के कार्य में लोगों के भीतर फिर से शक्ति और उत्साह पैदा कर सकते हैं।

राजकीय क्षेत्र

भारत सरकार ने किसी संकुचित या सैद्धांतिक विचार से प्रेरित हो कर राजकीय क्षेत्र को देश के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है। राजकीय क्षेत्र के उद्योगों की सूची पर एक निगाह डालने से पता चलेगा कि ऐसे हर उद्योग के लिए काफी मात्रा में पूंजी के विनियोजन और उत्तम प्रकार के प्रबंध-कौशल की आवश्यकता थी। निजी उद्योगपति साधारणतया इन बुनियादी उद्योगों की स्थापना के लिए आवश्यक साधन नहीं जुटा पाते। यह संयोग की बात नहीं है कि वर्तमान शताब्दि के शुरू के वर्षों में निजी क्षेत्र में इस्पात कारखानों की स्थापना के बाद; देश को नये इस्पात के कारखाने की स्थापना की चर्चा शुरू करने के लिए भी करीब आधी शताब्दि तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह सुविदित है कि विकासशील देशों में मुनाफे की मात्रा बुनियादी उद्योगों की अपेक्षा उपभोक्ता उद्योगों में अधिक होती है और इसलिए अर्थशास्त्र के साधारण नियम के अनुसार निजी पूंजी बुनियादी उद्योगों की अपेक्षा उपभोक्ता उद्योगों में अधिक लगती है। चूंकि विकास की भावी रफ्तार बुनियादी उद्योगों के विकास पर निर्भर करती है, इसलिए बुनियादी उद्योगों की स्थापना के लिए साधन जुटाने होंगे, चाहे उपभोक्ता उद्योगों के मुकाबले उनमें मुनाफे की मात्रा उतनी आकर्षक न हो। इस कारण राजकीय क्षेत्र को आगे आकर भावी विकास की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है। इसके अलावा, भारत जैसे देश में, श्री जॉन पी० लूइस के शब्दों में, "जहां सरकार स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय सभी आधुनिक संगठनों की अपेक्षा अधिक विकसित

थी, वहां राजनीतिक अधिकारियों के लिए विकास का नेतृत्व करना स्वाभाविक था।"

हाल में भारत सरकार ने राजकीय क्षेत्र में उद्योगों को व्यापक दायित्व सौंपने की दृष्टि से जो कदम उठाये हैं, उनका उद्देश्य विभिन्न तरीकों से उनकी उत्पादन-कुशलता बढ़ाना है। इस दृष्टि से कदम उठाये गए हैं कि कारखानों के जनरल मैनेजरों को प्रभावशाली कार्य-कारी प्रमुख समझा जाय और उन उद्योगों के कुशल संचालन के लिए उनको प्रत्यक्ष उत्तरदायी ठहराया जाय। अब उन्हें कार्य-संचालन की दृष्टि से महत्वपूर्ण निर्णय लेने के पर्याप्त अधिकार होंगे और संचालक-मंडल के सदस्यों की जिम्मेदारी आम नीतियों, देखभाल, आयोजन और समन्वय तक सीमित रहेगी। हमारी धरती पर विदेशी आक्रमण के कारण उत्पन्न वर्तमान संकट की दृष्टि से, इन महत्वपूर्ण राजकीय उद्योगों में उत्पादन बढ़ाने की कहीं अधिक आवश्यकता है।

राजकीय क्षेत्र के उद्योगों से यह भी आशा की जाती है कि वे भावी विनियोजन के लिए खासी बचत करें। इन उद्योगों के लिए 'न कोई हानि और न कोई लाभ' का सिद्धांत अब सर्वथा पुराना पड़ गया है। वास्तव में, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में ये राजकीय उद्योग श्री जोन राबिन्सन के शब्दों में स्थापित ही इसलिए किये जाते हैं कि "वे पूंजीवाद की अपेक्षा किसी भी अर्थव्यवस्था से विनियोजन पूंजी प्राप्त करने के कहीं अधिक शक्तिशाली साधन सिद्ध होते हैं।"

तीसरी योजना की अवधि में यह अनुमान लगाया गया है कि केंद्रीय और राज्य-सरकारों द्वारा संचालित उद्योगों से कार्यकारी खर्च, सामान्य प्रतिस्थापन, ब्याज और लाभांश चुकाने के बाद लगभग ४५० करोड़ रुपये की बचत होगी। इसके अलावा, भारतीय रेलों से राष्ट्रीय योजना के लिए ३५० करोड़ रुपया जुटाने की आशा की गई है।

श्रम की उत्पादिता

इन राजकीय उद्योगों में काम करनेवाले श्रमिकों की उत्पादिता-शक्ति बढ़ाने के लिए श्रमिक वर्गों को भौतिक और सामाजिक

प्रोत्साहन देना जरूरी होता है। साम्यवादी देशों में, जिनमें रूस भी शामिल है, उत्पादन बढ़ाने के लिए बोनस और काम की मजदूरी के रूप में ठोस भौतिक प्रोत्साहन दिये जाते हैं। श्री डगलस जे ने लिखा है, "सोवियत रूस के आज के समाज में सबसे अधिक और सबसे कम वेतन पानेवालों की कर चुकाने के बाद वास्तविक आय का अंतर निश्चय ही ब्रिटेन और स्केण्डीनेविया के देशों की अपेक्षा अधिक है और संभवतः अमरीका के बराबर है।" श्री डेविड गारनिक के अनुसार "सोवियत प्रबंधकर्त्ता का मुख्य काम उत्पादन से संबंधित है; उत्पादन की मात्रा ही उसके काम की कसौटी समझी जाती है।"

भौतिक प्रोत्साहनों के अलावा, श्रमिकों की उत्पादिता-शक्ति स्थायी आधार पर उसी दशा में बढ़ाई जा सकती है जब श्रमिकों को औद्योगिक प्रतिष्ठान का 'साथी-ट्रस्टी' माना जाय और मालिक तथा मजदूर दोनों को अपने कर्तव्यों और अधिकारों का पूरा भान हो। जैसा कि तीसरी पंचवर्षीय योजना में कहा गया है, "गरीबी, बेकारी और अल्प उत्पादिता के दुश्चक्र को तभी तोड़ा जा सकेगा, जब उत्पादन की क्रिया में लगे सभी लोगों को अधिकतम योगदान करने के लिए जोरों से प्रेरित किया जायगा।"

राजकीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों को अपने कारोबार में व्यावसायिक नैतिकता और ईमानदारी की ठोस परंपराएं भी कायम करनी चाहिए। जैसा कि श्री फर्डिनेन्ड ज़्विग ने कहा है, "कोई संगठन बहुत कार्य-कुशल और लाभदायक हो सकता है, किंतु राष्ट्र की नैतिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से सर्वथा विफल सिद्ध हो सकता है।" भ्रष्टाचार से मुक्त और ईमानदार प्रशासन के बिना समाजवादी, समाज विशेषकर उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में, बाहरी आकर्षण के बावजूद केवल खोखला ही होगा।

राजकीय क्षेत्र का आकार

कुछ लोगों ने भारत में राजकीय क्षेत्र के आकार के बारे में भ्रांत धारणाएं बना ली हैं। शायद, यह पूरी तरह अनुभव नहीं किया जाता

कि तीसरी योजना के अंत में संगठित उद्योगों में लगी पूंजी में राजकीय क्षेत्र का अंशदान केवल २५ प्रतिशत होगा; शेष ७५ प्रतिशत निजी क्षेत्र के हाथों में होगा।

तीनों योजनाओं की अवधियों में खनिज उत्पादन के लिए राजकीय क्षेत्र के पूंजी विनियोजन में कम-से-कम १० प्रतिशत से लेकर करीब ३३ प्रतिशत तक की वृद्धि होने की आशा है। किंतु अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में, जिनमें कृषि और सामाजिक सेवाओं का भी समावेश है, कुल पूंजी विनियोजन के मुकाबले राजकीय क्षेत्र की पूंजी का अनुपात प्रथम योजना के ४६ प्रतिशत से बढ़कर दूसरी योजना में ५४ प्रतिशत हो गया था। तीसरी योजना में अनुमान है कि यह ६० प्रतिशत होगा और चौथी तथा उसके बाद की योजनाओं में निश्चित: राष्ट्रीय नीति के अनुसार उसमें और भी वृद्धि होगी।

निजी क्षेत्र

किंतु भारतीय अर्थव्यवस्था में, विशेषकर उपभोक्ता उद्योगों में निजी क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा। औद्योगिक नीति विषयक प्रस्ताव (देखें परिशिष्ट २) में स्पष्ट कहा गया है कि राज्य की यह नीति होगी कि वह ऐसे उद्योगों के निजी क्षेत्र में विकास होने में सहायता और प्रोत्साहन दे, जो ए और बी सूची में शामिल नहीं हैं और उनके लिए आवश्यक सहायता का भी प्रबंध करे। अवश्य ही, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि निजी क्षेत्र के औद्योगिक प्रयासों को सरकार की सामाजिक और आर्थिक नीति के व्यापक ढांचे में लाजमी तौर पर अपना स्थान ग्रहण करना होगा और तद्विषयक कानूनों के अनुसार नियंत्रण और नियमन में रहना होगा। आखिर तो श्री जार्ज गोयडर के शब्दों में, "आधुनिक समाज में निजी उद्योग को हिस्सेदारों के साथ-साथ श्रमिकों, समाज और उपभोक्ताओं के हितों की भी रक्षा करनी होगी।" किंतु भारत सरकार स्वीकार करती है कि साधारणतया इन उद्योगों को राष्ट्रीय योजना के लक्ष्यों और उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अपना विकास करने की यथासंभव अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता दी जाय।

भारत के प्रधानमंत्री ने भी बार-बार दोहराया है कि योजना के ढांचे के भीतर निजी क्षेत्र को विकास करने का अवकाश, स्वतंत्रता और प्रोत्साहन दिया जाय। उन्होंने कहा है, "आप इस क्षेत्र को सैकड़ों तरीकों से नियंत्रित कर सकते हैं।......किन्तु जहां आप उनका नियंत्रण नहीं करते, वहां उन्हें आप पहल करने और परिणाम लाने का अवकाश दीजिए।" इस प्रकार राजकीय और निजी क्षेत्रों में मेल-मिलाप की भावना से काम करने की आशा की जाती है। योजना आयोग के अनुसार, "हर क्षेत्र को दूसरे की पूर्ति करना और सारे राष्ट्र के विकास में योगदान देना चाहिए।"

यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे उत्पादन में आज निजी उद्योगों का प्रमुख भाग है। इस क्षेत्र में केवल बड़े उद्योग ही नहीं हैं, बल्कि करोड़ों किसान, कारीगर, व्यापारी और छोटे व्यवसायी शामिल हैं, जिनके पारस्परिक मेल से आर्थिक क्रिया-कलाप और भारत की कुल जन-संख्या का एक बड़ा भाग बनता है। संगठित उद्योगों के क्षेत्रमें भी राष्ट्रीय आयोजन के फलस्वरूप निजी क्षेत्र को भारी प्रोत्साहन मिला है, क्योंकि, उसके अनुसार उपभोक्ता-सामग्री के आयात पर अनेक कड़े प्रतिबंध लगाये गए हैं और पूंजीगत माल और आयातों की स्थिरता के लिए विदेशी विनिमय अधिक मात्रा में उपलब्ध किया गया है। श्री वी० के० आर० वी० राव ने लिखा है, "इस नीति ने न्यूनाधिक घरेलू बाजार की गारंटी सुलभ की है, जिससे निजी क्षेत्र का योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्यों से भी अधिक व्यापक पैमाने पर और विविध रूपों में विकास और विस्तार हुआ हैं।" भारत में निजी उद्योगों को औद्योगिक वित्त-निगम, औद्योगिक ऋण और विनियोजन निगम, जीवन बीमा निगम और भारत पुनर्वित्त निगम संस्थाओं से ठोस प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता मिली है।

अप्रत्यक्ष रूप से, राज्य निजी क्षेत्र को करों में रियायतें देकर आर्थिक दृष्टि से सहायता देता रहा है, जिससे पूंजी विनियोजन को प्रोत्साहन मिले। उदाहरण के लिए. दुहरा घिसाई अलाउंस, विकास रिबेट और अमुक अवधि के लिए कर-मुक्ति की व्यवस्था की गई है। यह भी याद रखना चाहिए कि राजकीय उद्योगों के अंतर्गत आर्थिक

और सामाजिक मदों में मुख्यतः बिजली, परिवहन, संचार, तकनीकी शिक्षा और वैज्ञानिक शोध के लिए जो भारी पूंजी विनियोजन हुआ है, वह निजी क्षेत्रों को पुष्ट करने में अभूतपूर्व तरीके से सहायक रहा है।

सहकारी क्षेत्र

किंतु निजी क्षेत्र को भारत की नियोजित अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पन्न नई स्थिति के साथ खुशी-खुशी संगति बिठाने के लिए तैयार होना चाहिए और श्री मोरिस डॉब के शब्दों में "व्यावसायिक स्वतंत्रता की कल्पना" से पीड़ित नहीं होना चाहिए। हमारे समाजवादी ढांचे में, यह आशा की जाती है कि व्यापार और उद्योग का निजी क्षेत्र धीरे-धीरे कार्यकुशल और सुगठित सहकारी क्षेत्र बन जायगा, जिसमें निजी अथवा समूहगत प्रेरणा के लाभों के साथ-साथ समाज की आम भलाई का भी मेल होगा। सहकारी क्षेत्र में, स्वभावतः निजी व्यवसायियों को सतत आधार पर उचित मुनाफा कमाने का काफी अवकाश होगा, किंतु उन्हें समुदाय के हितों को ध्यान में रखते हुए थोड़े मुनाफे पर संतोष करना चाहिए। मुनाफाखोर समाज में अनियोजित अर्थ-व्यवस्था का जमाना हमेशा के लिए लद चुका है और आज की गति-शील और शीघ्र परिवर्तनशील दुनिया में उसे वापस लाने की कोशिश बेकार होगी।

आर्थिक कुशलता

उद्योग और कृषि दोनों क्षेत्रों में जहां तक उन्नत तकनीक के प्रयोग का सवाल है, उत्पादिता कुशलता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक उपाय अपनाने की हर कोशिश की जा सकती है, किंतु उच्चतर उत्पादन और पूर्णतर रोजगार के मध्य सही संतुलन रखने की पर्याप्त सावधानी रखी जानी चाहिए। अल्प विकसित देशों में आधुनिकतम मशीनों का मनमाना उपयोग करने और अपने सीमित पूंजीगत साधनों और बेकार जन-शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग की आवश्यकता को नजरअंदाज करने की वृत्ति पाई जाती है। डा० ईनजिग ने लिखा है कि जहां अर्थव्यवस्था

अत्यधिक विकसित हो और आबादी थोड़ी हो, वहां श्रम की बचत करनेवाले साधनों का उपयोग लाजमी है, किंतु पिछड़े देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं में अपने-आप चलनेवाली मशीनों और आधुनिकतम यांत्रिक साधनों का प्रचलन शायद ही लाभदायक होगा, जहां बड़ी संख्या में अकुशल मजदूर खेतों और कारखानों में नाकाफी मजदूरी पर काम पाने को लालायित रहते हैं।

प्रोफेसर गालब्रेथ ने इस जाहिरा किंतु बहुधा भूले हुए अनुभव को दोहराया है कि अल्पविकसित देशों को अधिक प्रगतिशील देशों की विधियों को, जिनमें मजदूरों की कमी का खयाज रखा जाता है, अपने विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में नहीं अपनाना चाहिए। वह कहते हैं, "ऐसा करने से अल्प साधनों की बर्बादी होगी और विकास में बाधा पड़ेगी और संयोग से भी कहीं अधिक बेकारी में वृद्धि होगी।" डा० शूमाकर 'माध्यमिक तकनीक' अपनाने की जोरदार हिमायत करते हैं, जो वास्तव में भारतीय परिस्थितियों के उपयुक्त होगी। किंतु यह स्वीकार किया जाता है कि अल्प विकसित देशों में एक से अधिक प्रकार की तकनीक इस्तेमाल की जा सकती है। डा० बेटलहीम के शब्दों में, "आखिरी तकनीकी चुनाव में किसी एक तकनीक का नहीं, बल्कि तकनीक समूह का चुनाव करना होता है।" इसी दृष्टि से, योजना-आयोग ने छोटे, कुटीर और ग्राम-उद्योगों के विकास और विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी है। हाल में, विभिन्न राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में सघन और समन्वित आधार पर उद्योगों की करीब पचास नमूने की परियोजनाएं कायम करने का निश्चय किया गया है। इनमें उन्नत तकनीक अपनाने के साथ-साथ अविकसित क्षेत्र के लोगों को पूरा रोजगार देने की भी व्यवस्था की जायगी। हमारा बुनियादी लक्ष्य केवल तकनीकी कुशलता हासिल करना नहीं है, बल्कि हम व्यापक अर्थ में आर्थिक कुशलता प्राप्त करना चाहते हैं। जो आर्थिक संगठन आधु-निकतम तकनीकी सुधारों के पीछे दौड़ता है और बेकारी तथा मानव-दुखों के रूप में सामाजिक हानि का हिसाब नहीं लगाता, उसे समाज-वादी, प्रगतिशील या कार्यकुशल संगठन नहीं कहा जा सकता।

'यांत्रिक' की बजाय 'रासायनिक'

कृषि के क्षेत्र में कुछ राजकीय यांत्रिक फार्म कायम किये गए हैं, ताकि उन क्षेत्रों का पर्याप्त विकास हो सके जिनमें सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध की जा रही हैं और जहां काफी संख्या में जनशक्ति सहज उपलब्ध नहीं है। किंतु आमतौर पर हमारी नीति उन छोटे किसानों को उन्नत औजार और साधन देना है, जो बड़े पैमाने पर मशीनी खेती नहीं कर सकते। हमारी जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में, जहां आबादी काफी सघन है, विकसित देशों-जैसी मशीनी खेती न तो व्यावहारिक होगी और न वांछनीय। जॉन स्ट्रेची ने एशिया और अफ्रीका के देशों के कृषि-कार्यक्रमों में यांत्रिक के बजाय रासायनिक साधनों के उपयोग पर बहुत अधिक बल दिया है। वह कहते हैं कि रासायनिक खादों, स्थानीय खादों और कीटनाशक औषधियों का व्यापक उपयोग करना चाहिए। इसके अलावा, दुनियाभर का यह अनुभव रहा है कि मशीनी खेती लाजमीतौर पर प्रति एकड़ उपज नहीं बढ़ाती है। उदाहरण के लिए, अमरीका और आस्ट्रेलिया के बड़े फार्मों की तुलना में जापान में छोटे फार्म दुगनी और डेन्मार्क तथा स्विट्जरलैण्ड में चौगुनी उपज करते हैं। यह सही है कि बड़े फार्मों में उत्पादिता प्रति व्यक्ति बढ़ती है, प्रति एकड़ नहीं। इसलिए समाजवाद को बड़े पैमाने पर मशीनीकरण का पर्यायवाची नहीं समझा जाना चाहिए। विभिन्न राष्ट्रीय-अर्थ-व्यवस्थाओं में स्थानीय परिस्थितियों और जरूरतों के अनुसार उत्पादन के उन्नत तरीके बुद्धि-संगत और संतुलित रूप में अपनाने चाहिए।

४

न्यायोचित वितरण

जहां समाजवादी समाज की स्थापना के लिए कृषि और औद्योगिक उत्पादन की रफ्तार तेज करना बहुत आवश्यक है, वहां न्यायोचित वितरण की व्यवस्था करना और वर्तमान आर्थिक और सामाजिक विषमताओं में कमी करना भी कम जरूरी नहीं है। आधुनिक विज्ञान और तकनीक शास्त्र की प्रगति के साथ पश्चिम के अनेक देश श्री लुई फिशर के शब्दों में 'समृद्धि के संकट' से पीड़ित हैं। कुछ लोगों की प्रकट समृद्धि के मध्य लज्जाजनक सार्वजनिक गरीबी विद्यमान है।

यह अधिकतम सामाजिक कल्याण दो अत्यंत भिन्न तरीकों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। कुछ पश्चिमी लोकतंत्री देश, जिनमें पश्चिमी जर्मनी भी शामिल है, हृदय से यह मानते हैं कि बाजारगत अर्थव्यवस्था के अंतर्गत मुक्त प्रतियोगिता द्वारा ही व्यक्तिगत समृद्धि और सार्वजनिक हित दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं। डा० लुडविग एर्हर्ड स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि "प्रतियोगिता के एकमात्र रास्ते से ही सारे समाज की प्रगति और लाभ यानी समाजीकरण सर्वोत्तम रूप में प्राप्त किया जा सकता है।" इस आर्थिक मान्यता का आधार इस आशा में निहित है कि उत्पादन के उच्चतर स्तर और व्यक्तिगत समृद्धि के फलस्वरूप अंत में सामाजिक और राष्ट्रीय कल्याण सिद्ध हो सकता है। इसके विपरीत, साम्यवादी देश 'सर्वहारा की तानाशाही' के द्वारा वर्ग-हीन समाज-व्यवस्था कायम करने की कोशिश कर रहे हैं, किंतु तानाशाही तंत्र अंत में अत्यंत केंद्रित और नौकरशाही प्रशासन को जन्म देता है और राज्य निस्तेज होने के बजाय करीब-करीब असीम सत्ता का उपभोग करता है। ऑल्डस हक्सले कहते हैं कि "अमर्यादित संगठन का अमानवी प्रभाव होता है, वह स्त्री-पुरुषों को स्वयं-चालित मशीनें बना

देता है और रचनात्मक भावना का गला घोंट देता है।" प्रोफेसर एलेक नोव ने अपनी नई पुस्तक में यह सिद्ध करने के लिए विस्तृत तथ्य और आंकड़े प्रस्तुत किये हैं कि चार दशाब्दियों के तानाशाही आयोजन के बावजूद सोवियत रूस में आज भी कृषि का "आयोजन तथा प्रशानस अकुशल और अपव्ययी है।" ख्रुश्चेव ने अपने देश के कृषि-संगठन के कुप्रबंध और व्यापक भ्रष्टाचार की कड़ी आलोचना की थी। चीन में देहाती कम्यूनों का प्रयोग मुख्यतः इसलिए विफल रहा कि उसके अमल में बहुत अधिक कठोरता और एकरूपता का आश्रय लिया गया।

भारतीय आयोजन में, दुनिया के आर्थिक इतिहास में शायद पहली बार विकेंद्रित समाजवादी समाज का निर्माण करने का हार्दिक प्रयास किया जा रहा है, जिसमें आंर्थिक विकास की गतिशील रफ्तार के साथ व्यापक लोकतंत्री प्रक्रिया के अंतर्गत और शांतिमय तरीकों से व्यापक सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना संभव होगी। गांधीजी के कथनानुसार, "समान वितरण का सच्चा अर्थ यह होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन प्राप्त हो।" इसका यह अर्थ है कि "ट्रस्टीपन की भावना से जीवन के हरेक क्षेत्र में संयम से काम लिया जाय।" नेहरुजी ने हमेशा इस बात पर बहुत अधिक जोर दिया था कि सभी नागरिकों की खाना, कपड़ा, मकान और शिक्षा-जैसी प्राथमिक जरूरतों की पूर्ति की जाय ताकि जन-साधारण को न्यूनतम किंतु उत्तम जीवन-मान प्राप्त हो सके। यह स्पष्ट है कि समाजवादी समाज की स्थापना के लिए शब्दशः समान वितरण न तो व्यावहारिक है और न आवश्यक।

प्रगतिशील कर-प्रणाली

तीसरी योजना में वर्तमान विषमताओं को कम करने और थोड़े से लोगों या समूहों के हाथ में आर्थिक सत्ता केंद्रित न होने देने के लिए अनेक लोकतंत्री उपाय प्रस्तावित किये गए हैं। भारत सरकार की कर-नीति में इसी लक्ष्य की दृष्टि से संशोधन किया गया है। २८ फरवरी १९६३ को संसद के सामने अपना बजट-प्रस्ताव पेश करते हुए वित्तमंत्री

ने कहा था, "हमको जिस गम्भीर चुनौती का सामना करना पड़ रहा है, उसको देखते हुए यह और भी अधिक जरूरी है कि समता और सामाजिक न्याय के जिन विचारों को हमने अपने जीवन का अविभाज्य अंग स्वीकार किया है, उन पर पहले से भी कहीं अधिक उत्साहपूर्वक ध्यान दिया जाय।" निम्नतर आयवाले समूह की आय में वृद्धि करने के अलावा, वर्तमान कर-नीति का उद्देश्य बड़ी आयवालों पर उत्तरोत्तर अधिक कर लगाना है। आयकर संबंधी आंकड़ों से पता चलता है कि यदि करारोपण के पहले और बाद आयकर देनेवालों की संख्याओं की तुलना की जाय तो पता चलेगा कि करारोपण के बाद आय के आधार पर उन का पुनर्विभाजन न्यून आय-समूहों के पक्ष में होगा।

निम्न तालिका[1] इस स्थिति पर प्रकाश डालती है—

करारोपित आय का क्षेत्र	सन् १९५९-६० में आयकर देने वालों की संख्या (.००० में)	
रु०	करारोपण के पहले	करारोपण के बाद
५००० से नीचे	३०६.०	३१४.४
५००१ से १०,०००	३३६.९	३४३.१
१०,००१ से २५,०००	१८०.२	१८३.९
२५,००१ से ७०,०००	५४.१	४१.८
७०,००१ और ऊपर	१३.६	७.६
योग	८९०.८	८९०.८

भारत में आयकर और संबंधित टैक्सों की दर करारोपित आय के क्षेत्र के अनुसार न केवल उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, बल्कि अर्जित आय के प्रकार के अनुसार भी क्रमिक प्रगतिशील है। इस प्रकार आय की समान परिधि में भी सर्वथा अनार्जित आय पर सर्वाधिक कर लगेगा

1. केंद्रीय राजस्व मंडल के आंकड़ों के आधार पर।

और वेतन के रूप में होनेवाली आय पर कर-भार कम-से-कम होगा। दो लाख की वार्षिक आय के कर-दाता को अपनी आय का ६७.३ प्रतिशत देना होगा बशर्ते कि यह आय उसका वेतन हो। वेतन के अलावा अन्य सर्वथा अर्जित आय पर कर-दाता को आय की उसी राशि पर ६८.९ प्रतिशत और सर्वथा अनार्जित आय पर ७४.६ प्रतिशत देना होगा। सन् ६३-६४ के बजट में आयकर पर जो अतिरिक्त अधिशुल्क लगाया गया था, वह भी क्रमिक प्रगतिशील था।

अप्रत्यक्ष कर

समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था कायम करने के सिद्धांत के अनुसार उत्तरोत्तर वृद्धिगत करारोपण का तत्त्व केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा वसूल किये जानेवाले अप्रत्यक्ष करों में भी दिखाई देता है। इस प्रकार, नियम रूप में वस्तुओं पर जो कर लिये जाते हैं, उनमें विलास और अर्द्धविलास की चीजों पर सामान्यतः अधिक कर वसूल किया जाता है। जिसके फलस्वरूप ऊंची आय कमानेवाले समूहों की वास्तविक आय में कमी हो जाती है। इसके विपरीत, जिन चीजों पर थोड़ी आय कमानेवाले अपनी आय का बड़ा भाग खर्च करते हैं, उन पर या तो बिल्कुल ही टैक्स नहीं लिया जाता या कम लिया जाता है। उदाहरण के लिए, १९६३-६४ के बजट में दियासलाई, चीनी, जूतों आदि पर कोई अतिरिक्त उत्पादन कर या अधिशुल्क नहीं लगाया गया। वनस्पति और ग़ैर-जरूरी तेलों पर से कर उठा लिया गया।

कुछ भड़कीली उपभोक्ता वस्तुओं पर उत्पादन-कर की मात्रा भारी है। उदाहरण के लिए, मोटर गाड़ियों पर कर की दर १००० रु० या यथामूल्य (एड वलोरम) पर १० प्रतिशत से ३००० रु० तक अथवा १६ हार्स पावर से ज्यादा या कम की स्थिति के अनुसार यथामूल्य पर १५ प्रतिशत है। इसी प्रकार रेफ्रीजीरेटरों और वातानुकूलित यंत्रों पर उत्पादन कर यथामूल्य पर लगभग २० प्रतिशत है। इसके विपरीत कुछ वस्तुएं जन-उपभोग की हैं, जैसे दियासलाई, चीनी, साबुन आदि, उन पर हल्का कर वसूल किया जाता है।

सन् १९६३-६४ के बजट में कुछ वस्तुओं पर उत्पादन कर बढ़ाया गया है, और साथ ही अधिशुल्क भी लगाया गया है। इससे करों की क्रमिक वृद्धिशीलता के सिद्धांत की और भी पुष्टि हुई है। देखा जाय तो बुनियादी उत्पादन में यही सिद्धांत प्रचलित है। उदाहरण के लिए सुपरफाइन कपड़े पर ४७.५ पैसे प्रति मीटर कर लिया प्रति जाता है, जबकि मोटे कपड़े पर यह कर १८ पैसे मीटर है। इसके विपरीत, सन् १९६३-६४ के बजट में लिखने के कागज, कांच, चीनी मिट्टी के सामान, बिजली के बल्ब आदि पर १० प्रतिशत से लेकर चाय, कहवा, साबुनों और प्रसाधन सामग्री पर २० प्रतिशत तक और रेशमी कपड़े, रेडियो, रेडियोग्रामों, मोटर गाड़ियों आदि पर ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत अधिशुल्क लगाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि उत्पादन कर इस तरह लगाये गये हैं कि क्रमिक वृद्धिशीलता की प्रणाली जन-उपभोग की वस्तुओं पर ही नहीं, बल्कि भड़कीली उपभोग की वस्तुओं पर भी लागू होती है।

राज्यों में लगनेवाले करों के बारे में भी यही प्रणाली अपनाई जा रही है। बिक्री कर इस तरह लगाया जाता है कि वह वस्तुओं की प्रवृत्ति और श्रेणी पर निर्भर करता है, चाहे वे विलास की हों या आवश्यकता की। रेफ्रीजिरेटरों, ग्रामोफोनों, वातानुकूलित यंत्रों आदि पर १० प्रतिशत बिक्री-कर लगाया जाता है। किंतु औषधियों और दवाओं, तिलहनों, साधारण कांच की चीजों पर टैक्स की दर विभिन्न राज्यों में २ से ५ प्रतिशत है। इससे पता चलता है कि सामान्य उपभोग की वस्तुओं पर कर लगाने में क्रमिक वृद्धिशील कर-प्रणाली लागू होती है।

क्या धनी और धनी हो रहे हैं ?

कुल मिलाकर, राजस्व कर-नीति और अल्प आयवाले समूहों को दिये जानेवाले अन्य प्रोत्साहनों के फलस्वरूप अल्प आयवाले समूहों में कमाने-वालों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। अखिल भारतीय आयकर अंकों के आधार पर संकलित आगे की तालिका से पता चलता है कि सन् ५३-५४

से ५९-६० के छह वर्षों में ५००० रु० वार्षिक से कम कमानेवालों की संख्या में उच्च आयवाले समूहों के व्यक्तियों की संख्या की तुलना में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

करारोपण के पूर्व आयकर प्रदाताओं की कुल संख्या

(अंक .००० व्यक्तियों में)

करारोपित आय का क्षेत्र (रु०)	१९५३-५४	सालभर के कुल का %	१९५९-६०	सालभर के कुल का %
५००० से नीचे	१५७.६	३१.१	३०६.०	३४.४
५००१ से १०.०००	२०१ २	३९.७	३३६.९	३७.८
१०,००१ से २५,०००	१०७.५	२१.२	१८०.२	२०.२
२५,००१ से ७०,०००	३२.०	६.३	५४.१	६.१
७०,००१ से अधिक	८.१	१.६	१३.६	१.५
योग	५०६.४	१००.०	८९०.८	१००.०

इस तालिका से पता चलेगा कि ५००० रु० से नीचे के आय-समूहों में आयकर दाताओं का प्रतिशत सन् ५३-५४ में ३१.१ प्रतिशत से बढ़कर सन् ५९-६० में ३४.४ प्रतिशत हो गया है। इसके विपरीत. अन्य-आय समूहों में यही प्रतिशत कम हुआ है।

कर न लगनेवाले आय-समूहों के संबंध में कोई निश्चित आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। किंतु निम्नतम आयवाले व्यक्तियों के डाकखानों और परिगणित बैंकों के बचत-खातों की संख्या बतानेवाली निम्न तालिका से स्थिति का खासा अनुमान किया जा सकता है।

सेविंग बैंक अमानत खाते

	१९५१-५२	१९६१-६२	५१-५२ की तुलना में ६१-६२ की
	(करोड़ रुपयों में)		प्रतिशत वृद्धि
क. पोस्ट आफिस बचत खातों की राशि वर्ष के अन्त में	७४.२	३२५.४	४३८.६
ख. परिगणित बैंकों के बचत खातों की वर्ष के अन्तिम शुक्रवार की राशि	१३५.७	३३३.७	२४५.९
क+ख का योग	२०९.९	६५९.१	३१४.०

यह दिखाई देगा कि सन् ५१-५२ से ६१-६२ की दस वर्ष की अवधि में बचत-खातों की राशि तीन गुनी से अधिक बढ़ी है। डाकखानों के बचतखातों की राशि में ४३९ प्रतिशत की असाधारण वृद्धि हुई है और यह अनुमान किया जाता है कि निम्नतम आय-समूहवाले व्यक्ति डाकखानों में ही आमतौर पर बचत-खाते खोलते हैं। यह सही है कि इन बचतखातों की राशि में हुई कुछ वृद्धि छोटी बचत संग्रह-अभियान और जन-संख्या की वृद्धि के कारण हुई होगी। किंतु इस तालिका से यह तथ्य प्रकट होता है कि जो व्यक्ति पहले बचत नहीं कर पाते थे, वे अब करने लगे हैं।

इन तथ्यों से इस आलोचना का पूरा औचित्य सिद्ध नहीं होता कि भारत में आयोजन के बावजूद विभिन्न आर्थिक शक्तियों के फलस्वरूप धनी अधिक धनी और गरीब अधिक गरीब हो रहे हैं। कम आयवाले समूहों में व्यक्तियों की आय में दृश्य परिवर्तन दिखाई देता है, जबकि ऊंची आयवाले समूहों में व्यक्तियों की आय में गिरावट आई है। इसके

अलावा, आयकर और कंपनी करों के अतिरिक्त ऊंची आयवाले समूहों पर उत्पादन करों, संपत्ति, पूंजी उपलब्धि और उपहार टैक्सों आदि के रूप में उत्तरोत्तर कर-भार डालने के अन्य अनेक कदम उठाये गए हैं। इन सब टैक्सों का धनी वर्गों पर कुल मिलाकर काफी असर पड़ा है।

तुलनात्मक अध्ययन

भारत, जापान, अमरीका और पश्चिमी जर्मनी में व्यक्तियों की आय पर लगनेवाले करों का तुलनात्मक अध्ययन लाभदायक होगा।

सामान आय पर (दो बच्चों वाले विवाहित व्यक्तियों के लिए) प्रभावशील आयकर की दरें

(सन् १९६१-६२ के अंक)

	औसत पारिवारिक आय के गुणन के रूप में करदाताओं की आय					
	२	४	१०	२०	५०	१००
भारत	०	१.३	६.९	१७.६	४५.४	६१.७
जापान	२०.२	२१.२	३१.५	३९.६	४८.८	५४.४
अमरीका	२१.१	३१.१	५०.३	६४.४	७९.५	८५.५
पश्चिमी जर्मनी	२५.४	३४.८	४४.६	५१.५	उप. नहीं	उप. नहीं

उपरोक्त तालिका से पता चलेगा कि 'समान' आमदनियों को तुलना का आधार माना जाय तो भारत में करों का बोझ जापान, अमरीका और पश्चिमी जर्मनी के मुकाबले कहीं कम है (अवश्य ही जापान में १००गुणा पारिवारिक आयपर कर-भार कम है।) कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत में गरीबों पर कम कर-भार है, मध्यम वर्ग पर कर-भार सामान्य है और ऊंची आयवालों को भारी कर-भार वहन करना पड़ता है, किंतु अप्रत्यक्ष कर भारी हैं और उनका बोझ साधारणतया मध्यम आयवाले समूहों पर पड़ता है, इसलिए सर्वांग टैक्स-प्रणाली की उत्तरोत्तर वृद्धिशीलता कम हो जाती है। यदि समान आमदनियों को तुलना का आधार माना जाय, तो जापान और पश्चिमी

जर्मनी में निम्न और मध्यम आय-समूहों के साथ अपेक्षाकृत कड़ाई होती है। अमरीका करोड़पतियों के अलावा अन्य सभी आय-समूहों के प्रति कुछ उदार है। पिछले कुछ वर्षों में भारत में आयकरदाताओं की संख्या सच-मुच बराबर बढ़ रही है। आयकर लगनेवाले व्यक्तियों की संख्या, आय की राशि और कर-निर्धारण की प्रतिशत वृद्धि सन् ५३-५४ और ५९-६० के मध्य क्रमशः ७६, ५३ और २१ रही है। कर लगनेवाले व्यक्तियों की संख्या और कर की राशि में सन् ५४-५५ से जो सतत वृद्धि हुई है, उसका कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि, आयकर के लिए आय की सीमा में कानूनी कमी और संभवतः कर-वसूल करनेवाले अधिकारियों की पहले से अधिक सतर्कता है। किंतु यह अर्थसूचक है कि यद्यपि कर-देय आय की राशि राष्ट्रीय आय के अनुपात में कुल मिलाकर बढ़ी है, किंतु सन १९५९-६० में कर-देय राष्ट्रीय आय की वह केवल १८ प्रतिशत ही थी। इसकी तुलना में सन् ५८-५९ में मोटेतौर पर अमरीका में यह अनुपात ७० प्रतिशत और ब्रिटेन में ४० प्रतिशत था। भारत में कम अनुपात का एक कारण यह है कि देश के बहुसंख्यक लोगों की आय कानूनी छूट की सीमा ३००० रु० से कम है। आयकर छूट की सीमा ब्रिटेन में सन ५८-५९ में १८० पौण्ड अथवा २४०० रु० और अमरीका में सन् ५४-५५ में ६०० डालर अथवा २८५७ रु० थी। इसलिए भारत में छूट की सीमा और कम की जा सकती है। खासकर चीनी और पाकिस्तानी आक्रमणों के कारण उत्पन्न राष्ट्रीय-संकट की स्थिति को ध्यान में रखते हुए इसके लिए पूरा औचित्य है।

करों से बचना और करों की चोरी

यद्यपि आयकर के आंकड़ों के अध्ययन से पता चलता है कि निम्न आय-समूहों की आय में निश्चित परिवर्तन हुआ है। किंतु हमें यह तथ्य नजरअंदाज नहीं करना चाहिए कि देश में ऊंची आयवाले समूहों में करदाता करों से बचने और करों की काफी मात्रा में चोरी करते हैं। जैसा कि प्रोफेसर टिटमस ने ब्रिटेन के आयकर संबंधी आंकड़ों के गहरे अध्ययन के बाद कहा है, ये आंकड़े 'अंकीय भ्रमजाल' अधिक हैं, "कारण कि

समाज के सामाजिक और आर्थिक ढांचे में गहरा परिवर्तन आ चुका है; रोजगार, जन-संख्या की विशेषताओं और कौटुंबिक संबंधों में परिवर्तन हुआ है ।" धनी वर्ग विविध प्रकार से कानूनी दांव-पेचों के द्वारा करों से बचने की कोशिश करता है और ये 'सूक्ष्म तरीके' अब आकार में काफी बढ़ गए हैं । भारत में भी धनी और उच्च मध्यम-वर्ग के परिवार आय-कर और अधिकर की ऊंची दरों से बचने के लिए धीरे-धीरे विभक्त हो रहे हैं । उदाहरण के लिए, हिन्दू संयुक्त परिवारों में ४०,००० रु० से ऊपर की आमदनियों पर कर-निर्धारण कम हो रहा है । सन् ५३-५४ में इस श्रेणी में कर-दाताओं की संख्या २००९ थी । उनकी आय और टैक्स की राशि क्रमशः १८.२२ करोड़ और ८.४१ करोड़ रु० थी । सन् ५९-६० में इस श्रेणी में करदाताओं की संख्या घटकर १७५९ रह गई और उनकी आय १४.५६ करोड़ और देय-कर-राशि ६.८८ करोड़ रु० थी । इसलिए आयकर संबंधी आंकड़ों को, जिनसे देश में पहले की अपेक्षा अधिक आर्थिक समानता की दिशा प्रकट होती है, बिल्कुल यथार्थ निदर्शक ही नहीं मान लेना चाहिए ।

टैक्सों से बचने के विभिन्न तरीकों के अलावा यह मानना होगा कि देश के ऊंची आयवाले समूह टैक्सों की खासी मात्रा में चोरी करते हैं । करों की इस चोरी की मात्रा के अनुमानों में अवश्य ही अंतर होगा । ५० करोड़ से लगाकर २०० करोड़ तक प्रतिवर्ष करों की चोरी होने के अनुमान किये जाते हैं । किंतु हमें स्पष्टतः स्वीकार करना चाहिए कि आयकर की चोरी के विभिन्न छिद्रों के बंद करने की काफी गुंजाइश है । वर्तमान संकट के समय लोग राष्ट्रीय कोष में अधिक टैक्सों के रूप में अपना योगदान करने के लिए राजी हैं । किंतु वे यह जरूर चाहते हैं कि सरकार वर्तमान टैक्सों को, विशेषकर समाज के धनी वर्गों से, वसूल करने के लिए संगठित प्रयास करे । इस संबंध में निम्न सुझावों पर सावधानी से विचार किया जाय और जहां संभव हो, उन पर अमल किया जाय ।

(१) आयकर-दाताओं की भारत में कुल संख्या करीब १० लाख है । हमारी जन-संख्या को देखते हुए यह संख्या थोड़ी है । अगर आय-

कर विभाग घर-घर और दुकान-दुकान पर जाकर व्यवस्थित ढंग से जांच-पड़ताल करे तो आयकर-दाताओं की संख्या में वृद्धि होने की काफी गुंजाइश है। वर्तमान में ऐसी जांच की व्यवस्था है, किंतु इस विषय में अधिक उत्साह से काम लेने और राष्ट्रीय अभियान चलाने की जरूरत है।

(२) सारे देश में, शहरों में भवन-निर्माण की विस्तृत जांच कराना लाभदायक होगा, जिससे पता चल सके कि इस कार्य में पूंजी किन साधनों से प्राप्त हुई और भूतकाल में प्रकट की गई आमदनी से उसकी संगति बैठती है अथवा नहीं। आयकर अधिकारियों को यह मालूम करने की कोशिश करनी चाहिए कि ऐसी जायदादों से होनेवाली आय को आय के विवरणों में घोषित किया जा रहा है अथवा नहीं। इस विषय में कुछ चुने हुए शहरों में नमूने के तौर पर जांच की जा सकती है और उसके बाद इस योजना को सारे शहरी क्षेत्रों में लागू किया जाय।

(३) रजिस्ट्रारों और नायब रजिस्ट्रारों को हिदायत दी जाय कि वे भूमि और मकानों की जायदाद के लेन-देन का विवरण समय-समय पर आयकर विभाग को भेजें। आयकर अधिकारी संबंधित आयकर-दाताओं के आय-विवरणों की जांच-पड़ताल में इस जानकारी का उपयोग कर सकते हैं।

(४) प्रत्यक्ष-कर-समिति ने सिफारिश की है कि ठेकेदारों को जब विभिन्न सरकारी एजेंसियां भुगतान करें तो साथ ही आय-कर भी काट लिया करें ताकि कर की चोरी न होने पाये। यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस सिफारिश पर शीघ्र अमल किया जाय। मालूम हुआ है कि पाकिस्तान सरकार ने ठेकेदारों को भुगतान के समय ऐसा करना शुरू भी कर दिया है।

(५) कर से बचने के लिए इस ढंग से व्यवसाय किया जाता है, जिसे हिसाब-बहियों में दर्ज नहीं किया जाता। यह प्रथा बड़े पैमाने पर प्रचलित है। यह बुराई गत युद्ध के दौरान कीमतों को नियंत्रित करने संबंधी नियमों के कारण पैदा हुई और विभिन्न राज्यों में बिक्री-कर लागू होने के बाद उसे और भी बल मिला। इस प्रथा के कारण सरकार

को विक्री-कर के रूप में ही नहीं, बल्कि आय-कर में भी काफी हानि उठानी पड़ती है । इस प्रकार की करों की चोरी को बेहिसाब प्राप्त हुई संपत्ति की सतत जांच-पड़ताल करके ही प्रभावशाली रूप से रोका जा सकता है । इस प्रकार की जांच-पड़ताल बहुसंख्यक मामलों में संभव नहीं हो सकती । इसलिए सरकार को चुने हुए कर-चोरी के मामलों में क्षेत्रगत और व्यापार या उद्योगगत आधार पर मुकद्दमे चलाने चाहिए ।

(६) कस्टम विभाग में जानकारी देनेवालों को उदारतापूर्वक पुरस्कार दिये जाते हैं और उनसे अच्छे परिणाम निकले हैं । यह प्रणाली आयकर विभाग में भी जारी की जानी चाहिए ।

(७) कंपनी करों के संबंध में कंपनियों की खर्च की छूट की मदों को कड़ा करके कर-वसूली के छिद्रों को बंद किया जा सकता है । इस समय औद्योगिक और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के डायरेक्टरों और बड़े अधिकारियों को आवास, परिवहन और आतिथ्य सत्कार के नाम पर काफी उदार सुविधाएं दी जा रही हैं । यद्यपि सन् १९६१ के आय-कर कानून ने अतिथि-सत्कार की कुछ सीमा निर्धारित कर दी है, फिर भी अन्य कुछ मदों में कमी की गुंजाइश है, जिन्हें व्यवसाय को बढ़ाने के लिए उचित खर्च की संज्ञा दी जाती है । एक अधिकारी के वेतन और आनुसंगिक सुविधाओं पर ६०,००० रु० वार्षिक खर्च की सीमा निर्धारित कर देने का निर्णय एक सही कदम है ।

भारत को सही अर्थों में प्रगतिशील लोकतंत्र होना चाहिए । लोक-तंत्र को स्थायी आधार पर सफल होना हो तो उसे 'बहुत अधिक ढीला' और अनुशासन रहित नहीं होना चाहिए । अपने समस्त नागरिकों के लिए उच्चतर जीवन-मान प्राप्त करने के लिए उसे समाज विरोधी प्रवृत्तियों पर तात्कालिक और प्रभावशाली अंकुश लगाना चाहिए । कठोर कदम जब उठाये जाते हैं तो वे हमेशा लोकप्रिय नहीं होते, किंतु श्री वाल्टर लिपमैन के शब्दों में "बार-बार के नरम निर्णय ऐसी अवस्था उत्पन्न कर देंगे, जिसमें स्वतंत्रता और लोकतंत्र नष्ट हो जाते हैं ।"

आर्थिक शक्ति का विभाजन

तीसरी योजना ने ऐसी अनेक दिशाओं का निर्देश किया है, जिनके अनुसार कुछ व्यक्तियों अथवा समूहों के हाथों में आर्थिक शक्ति केंद्रित न होने देने के लिए कदम उठाये जा सकते हैं। प्रथम, जिन क्षेत्रों में बड़ी औद्योगिक ईकाइयों की स्थापना और भारी पूंजी-विनियोजन की आवश्यकता हो, उनमें राजकीय शक्ति के केंद्रीयकरण को प्रभावशाली रूप में रोका जा सकेगा। दूसरे, उद्योग में नये सिरे से दाखिल होनेवालों और मध्यम और छोटे आकार की औद्योगिक ईकाइयों को, विशेषकर सहकारी क्षेत्र में, अधिक अवसर दिये जा रहे हैं। सन् १९५६ के औद्योगिक-नीति-प्रस्ताव के दायरे में भारत सरकार को औद्योगिक लाइसेंसों के जरिये निजी पूंजी विनियोजन को नियंत्रित करने के पर्याप्त अधिकार मिले हुए हैं। इसके अनुसार, नई औद्योगिक ईकाइयों की स्थापना या पुरानी के विस्तार के लिए लाइसेंस कमेटी की पूरी स्वीकृति आवश्यक है। नये लाइसेंस जारी करते समय चुने हुए औद्योगिक समूहों में उद्योग केंद्रित न होने देकर आर्थिक शक्ति को फैलाने की सावधानी रखी जाती है। इससे अल्पविकसित क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना में मदद मिली है और विभिन्न क्षेत्रों में बहुत से नये और नौजवान व्यवसायियों को प्रोत्साहन मिला है।

जहां भारत सरकार समस्या के इन पहलुओं को स्वीकार करती है, वहां इस दिशा में आगामी वर्षों में प्रगति और तेज होनी चाहिए। प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल ने बताया है कि विदेशी सहयोग-कर्ताओं के साथ हुए करारों ने किस प्रकार कुछ भारतीय पूंजीपति प्रतिष्ठानों को और ताकत पहुंचाई है। निजी क्षेत्र में प्रबंधक श्रेणी के कर्मचारियों को अपेक्षाकृत जो भारी वेतन दिने जाते हैं, उसका उच्च सरकारी अफसरों पर बुरा प्रभाव पड़ा है, जो व्यवसायियों से आशा करते हैं कि वे उनके पुत्रों और रिश्तेदारों और रिटायर होने के बाद स्वयं उन्हें नौकरियां देंगे। इसलिए यह और भी जरूरी है कि इस बारे में सावधानी रखी जाय, ताकि आर्थिक शक्ति का वास्तविक अर्थ में ज्यादा विभाजन हो और एकाधिकारी प्रवृत्तियां विकसित न हों।

राजकीय नियंत्रण

भारत सरकार ने निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानों के मैनेजिंग एजेंटों और मैनेजिंग डायरेक्टरों के हाथों में आर्थिक शक्ति केंद्रित न होने देने के लिए अनेक कदम उठाये हैं। सन् १९५६ के कंपनी क़ानून के पास होने और उसमें हाल के संशोधनों के बाद राज्य को अंतर-कंपनी विनियोजन, विभिन्न कंपनियों की सह-डायरेक्टरशिप, आंतरिक साधनों के उपयोग और डायरेक्टरों तथा उच्च अधिकारियों के पारिश्रमिक के बारे में पहले से अधिक अधिकार प्राप्त हो गए हैं। औद्योगिक (विकास और नियमन) कानून १९५६ द्वारा प्राप्त अधिकारों का उत्पादन, वितरण और मूल्यों पर नियंत्रण करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। सन् १९६० के संशोधित कंपनी कानून के अंतर्गत कोई भी कंपनी एक साथ सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष, मैनेजिंग एजेंट, मैनेजिंग डायरेक्टर अथवा मैनेजर के रूप में एक से अधिक प्रबंध अधिकारी नियुक्त नहीं कर सकती। किसी सार्वजनिक लिमिटेड कंपनी या उसकी सहायक कंपनी में किसी व्यक्ति को प्रथम बार मैनेजर के रूप में नियुक्त करने के लिए भी केंद्रीय सरकार की मंजूरी प्राप्त करना जरूरी है। यदि भारत सरकार खास अनुमति प्रदान न करे तो कोई आदमी पब्लिक या प्राइवेट दो से अधिक कंपनियों के मैनेजर के रूप में काम नहीं कर सकता। कंपनी विनियोजनों के बारे में भी क़ानून की व्यवस्थाओं में संशोधन कर दिया गया है। कुछ मर्यादाओं और अपवादों को छोड़ कर प्रबंध समूहों के बाहर पूंजी विनियोजन के लिए सरकार की स्वीकृति आवश्यक होगी। अंतर-कंपनी विनियोजन में विनियोजन करनेवाली कंपनी अपनी संग्रहीत पूंजी का ३० प्रतिशत तक विनियोजन कर सकती है। इस समग्र सीमा के भीतर यह और प्रविधान है कि कोई कंपनी किसी दूसरी कंपनी के ९० प्रतिशत से अधिक साधारण शेयर नहीं खरीद सकती। सबसे ताजा संशोधन (१९६३) का उद्देश्य कंपनी कानून का समन्वित प्रशासन और भ्रष्ट-प्रणालियों का उन्मूलन है।

यह सुझाया गया है कि औद्योगिक वित्त-निगम जैसी विविध

सरकारी एजेंसियों को सुरक्षित ऋण देने के बजाय ठोस निजी उद्योगों की साधारण शेयर पूंजी में हिस्सा लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। सन् १९६० के संशोधित कानून के अनुसार निगम को ऐसा करने का अधिकार मिल गया है और कोई कारण नहीं कि समाजवादी नमूने के आंतरिक अंग के रूप में उस पर अमल क्यों न किया जाय ! यह संतोष का विषय है कि अब संसद ने उपयुक्त मामलों में ऋण को साधारण शेयरों में बदलने की नीति पर चलने का सरकार को अधिकार दे दिया है। यूनिट ट्रस्ट आंदोलन को भी भारत में प्रोत्साहन दिया जा रहा है, ताकि निम्न और मध्यम आय-समूह सट्टे से होनेवाली हानि की जोखिम न उठाते हुए शेयरों के रूप में संपत्ति हस्तगत कर सकें। प्रोफेसर टाने की राय में संपत्ति का विकेंद्रीकरण स्वतंत्रता का साधन होता है और मैं तो कहूंगा कि यह समाजवादी लोकतंत्र की दिशा में एक अच्छा कदम है।

छोटे उद्योगों का विकास

छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन देना और बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के मुकाबले उनकी प्रतियोगात्मक स्थिति को सुदृढ़ करना सरकार की सुनिश्चित नीति रही है। तीसरी योजना के शब्दों में "छोटे और ग्राम-उद्योगों ने गत दशाब्दि में अतिरिक्त रोजगार, अधिक उत्पादन और अधिक न्यायोचित वितरण की दिशा में उल्लेखनीय योगदान दिया है। तीसरी योजना की अवधि में उनका स्थान और भी महत्त्वपूर्ण रहनेवाला है। तकनीक और संगठन में सुधार हो जाने से ये उद्योग राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के अंतर्गत कार्यक्षम और प्रगतिशील विकेंद्रित क्षेत्र का रूप धारण कर सकते हैं और विशेषकर अविकसित क्षेत्रों में रोजगार और आय के साधन उपलब्ध कर सकते हैं। किंतु तकनीकी परिवर्तन की रफ्तार इस तरह नियमित करनी होगी कि बड़े पैमाने पर तकनीकी बेरोजगारी से बचा जा सके, जो लाखों व्यक्तियों के लिए मुसीबत का कारण होती है।

छोटे उद्योगों के विकास के लिए सरकार विभिन्न तरीकों से सहायता दे रही है। उनको कच्चा माल, मशीनें, आवश्यक सेवाएं और अपेक्षाकृत सस्ते दर पर ऋण सुलभ करने के लिए क़दम उठाये जाते हैं।

छोटे उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए सारे देश में औद्योगिक बस्तियां स्थापित की गई हैं। दूसरी योजना की अवधि में ६० बस्तियां या तो स्थापित की गईं या मंजूर की गईं। तीसरी योजना की अवधि में विभिन्न आकार की ३०० औद्योगिक बस्तियां स्थापित की जायंगी। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम ने दूसरी योजना की अवधि में लघु उद्योगों को किराया-खरीद की शर्तों पर ४.२० करोड़ रुपये मूल्य की मशीनें सुलभ की हैं। इसके विपरीत, सरकार ने कुटीर और लघु उद्योगों से जो सामग्री खरीदी, उसका मूल्य सन् ५३-५४ में ७, ४०,००० रुपये से बढ़कर सन् १९६०-६१ में ६ करोड़ रुपये से अधिक हो गया।

औद्योगिक बस्तियों के अलावा, उद्योग मंत्रालय ने तीसरी योजना की अवधि में, विशेषकर अल्प विकसित क्षेत्रों में अनेक ग्राम्य औद्योगिक बस्तियां स्थापित करने का निश्चय किया है। ग्राम्य औद्योगिक बस्तियों में कारीगरों के उपयोग के लिए मुख्यतः कार्य, स्थान और कुछ अन्य समान सेवा-सुविधाओं की व्यवस्था की जायगी।

लघु-उद्योगों का विकास हाल के वर्षों में भारत में विकास आयोजन का अत्यंत अर्थसूचक चिह्न है। उदाहरण के लिए, सन् १९५६-६० की अवधि में साइकल निर्माण करनेवाली लघु ईकाइयों की संख्या ४४ से १५०, सिलाई की मशीनों की ३५ से ७५, मशीनी औजारों की ३४४ से ५०० से अधिक, विद्युत मोटरों की ६ से ७४ और बिजली के पंखों की २२ से ४७ हो गई। लघु उद्योग द्वारा उत्पादित ग्रेड रहित मशीनी औजारों का मूल्य सन् १९५६ में १.३० करोड़ रुपये से बढ़कर सन् १९६० में ४ करोड़ रुपया हो गया। वर्तमान संकट के समय, लघु औद्योगिक ईकाइयों को सुरक्षा के लिए आवश्यक सामग्री का उत्पादन करने के लिए विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इस काम

के लिए तकनीकी श्रमिक बड़ी संख्या में फिर से प्रशिक्षित करने के लिए अल्प अवधि के पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की जा रही है।

ग्राम्य औद्योगीकरण

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, योजना-आयोग ने ग्राम्य औद्योगीकरण की करीब ५० परियोजनायें शुरू की हैं और इन परियोजनाओं से प्राप्त अनुभव को अन्य क्षेत्रों में अनेक गुना प्रसारित किया जायगा। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य भारतीय देहात का औद्योगीकरण करना है ताकि सहकारिता के आधार पर समाज का कृषि-औद्योगिक ढांचा स्थापित किया जा सके। देहाती क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के उद्योग पहुंचाकर हम गांवों और शहरों के बीच की चौड़ी खाई को पाटने में सफल हो सकते हैं। बड़े शहरों में औद्योगिक प्रतिष्ठानों के केंद्रित होने के कारण हमारे ग्रामीण क्षेत्रों के परंपरागत ग्राम और कुटीर उद्योग नष्ट हो रहे हैं और बेकारी और अर्द्धबेकारी बढ़ रही है। फलस्वरूप गांवों की आबादी शहरों को जा रही है और देहात का सामाजिक और आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है। डॉ० शूमाकर ने शहरी क्षेत्रों और ग्रामीण अथवा 'बची-खुची' अर्थव्यवस्था के बीच चलनेवाले सतत संघर्ष के कारण भारतीय अर्थ-व्यवस्था में "पारस्परिक विषदान की क्रिया" की ओर विशेष रूप से ध्यान खींचा है। गांवों और शहरों के बीच वर्तमान विषमताओं और संघर्षों को कम करने का एक-मात्र प्रभावशाली तरीका यह है कि मध्यम, लघु और ग्राम तथा कुटीर उद्योगों के व्यापक विस्तार द्वारा देहातों में नाना प्रकार के गैर-कृषि धंधे पहुंचाकर ग्राम-अर्थव्यवस्था में विविधता लाई जाय। प्रोफेसर कोल के शब्दों में, "गांधीजी का खादी-विकास-आंदोलन एक कल्पनाशील व्यक्ति का स्वप्न नहीं है, जो भूतकाल को जीवित करना चाहता हो, बल्कि वह गरीबी का अंत करने और भारतीय ग्रामीण के जीवन-मान को उन्नत करने का व्यावहारिक प्रयास है।" नेहरूजी ने भी इस बात पर जोर दिया था कि "अगर विशाल संख्या में बेकार और अर्द्धबेकार लोगों को तात्कालिक सहायता पहुंचानी है, यदि उस सड़ांध को रोकना है कि

जो सारे भारत में फैल रही है और जन-समूह को पंगु बना रही है, यदि ग्रामीणों के जीवन-मान को सामूहिक रूप से थोड़ा भी उन्नत करना है, और यदि यह सब-कुछ बिना विशेष पूंजी के करना है तो ग्रामीण उद्योगों को अपनाना ही होगा।"

फलतः, बहुत सारे गांवों में बिजली पहुंचाकर ग्रामीण औद्योगीकरण की क्रिया में सक्रिय मदद दी जा रही है। तीसरी योजना के अंत तक ५००० और इससे ऊपर की आबादीवाले सब गांवों को और २००० से ५००० तक की आबादीवाले ५० प्रतिशत गांवों में कृषि और ग्रामीण-उद्योग दोनों को पुष्ट करने के लिए बिजली दे दी जायगी। यह अक्सर अनुभव नहीं किया जाता कि किसी बेकार व्यक्ति को ग्रामीण वातावरण से हटाकर शहर में बसाने में जितना खर्च होता है, उससे कहीं कम उसे अपने ही गांव में रोजगार देने में खर्च होगा। जैसा कि वाल्टर लिपमैन ने कहा है, "हमें यह सादा और प्रकट सत्य स्वीकार करना चाहिए कि बड़े शहरों में एकत्र लोगों पर खुले देहात में रहनेवाले लोगों के मुकाबले सार्वजनिक या सामाजिक मदों पर अधिक खर्च करना पड़ता है।" योजना आयोग में किये गए कतिपय अनुमानों से प्रकट होता है कि एक आदमी को अपने ही गांव में रोजगार देने की तुलना में उसी व्यक्ति को शहर में रोजगार देने में पचास गुना अधिक रुपया खर्च होता है। निःसंदेह, भारत जैसा गरीब देश ग्रामीण आबादी के शहरी प्रयाण की वर्तमान रफ्तार को निर्बाध जारी नहीं रहने दे सकता। आचार्य विनोबा के शब्दों में हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सबसे दुखांत घटना यह है कि "जब कृषि विफल होती है तो सारा ग्राम-जीवन विफल हो जाता है।" करोड़ों अधनंगे और भूखे व्यक्तियों की इस दुखांत घटना को सुखी जीवन में बदलना होगा। अतः ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति किसी संकुचित सिद्धांतवाद पर नहीं, बल्कि व्यावहारिक विचारों पर आधारित है।

पिछले दिनों, अनेक हल्कों में सुझाव दिये गए हैं कि इन ग्रामीण-उद्योगों को जहां एक ओर सहकारी समितियां चला रही हैं, वहां दूसरी ओर पंचायत समितियों और जिला परिषदों के स्वामित्व और प्रबंध में

भी उन्हें चलाया जाना चाहिए। उड़ीसा सरकार इन आधारों पर ठोस योजना बना चुकी है। इसका अर्थ ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करना होगा। मेरी राय में यह प्रयोग करने योग्य है। अवश्य ही इसके लिए ऐसे स्थानीय उत्साही औद्योगिकों को खोजना और प्रशिक्षित करना होगा, जिन्हें व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में सामुदायिक हित के लिए नियोजित किया जा सके। आवश्यक पथ-प्रदर्शन और देखभाल की जाय तो कोई कारण नहीं कि यह अच्छा प्रयोग सफल न हो।

भूमि-सुधार कानून

देहाती क्षेत्रों में आय और संपत्ति के अधिक न्यायोचित वितरण के लिए भूमि-सुधारों का श्रीगणेश एक मुख्य कार्यक्रम रहा है। जमींदारी, जागीरी और इनामदारी प्रथाओं की समाप्ति, जो खेती योग्य भूमि के ४० प्रतिशत भागपर फैली हुई थी, समाजवाद की दिशा में हमारी प्रगति की महत्वपूर्ण मंजिल थी। इन सुधारों के फलस्वरूप २ करोड़ से अधिक कृषि-जीवियों का सामाजिक और आर्थिक दर्जा उन्नत हुआ है। इसके अलावा, किसान अब सरकार को पहले की अपेक्षा कम लगान देते हैं। गत दस सालों में जो काश्तकारी कानून स्वीकार किये गए हैं, उनके फलस्वरूप करीब-करीब सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों में किसानों को भूमि पर खेती करने के अधिकार मिल चुके हैं। कुछ राज्यों में किसानों को भूस्वामित्व का अधिकार भी मिला है। सब राज्यों में भूस्वामित्व की अधिकतम सीमा लागू होने से किसानों में खेती की जमीन अधिक बुद्धि-संगत और न्यायोचित तरीके से पुर्नविभाजित की जा सकेगी।

यह सही है कि भूमि-सुधारों के मामलों में अभी बहुत कुछ होना वांछनीय है। किसानों को भूमि-सुधार संबंधी क़ानूनों से जो क़ानूनी अधिकार मिले हैं, उनकी रक्षा करना वास्तव में बहुत कठिन काम रहा है। इसके अलावा भूमि-सुधारों का लोक-आंदोलन के रूप में विकास नहीं हुआ है; साधारणतया इसे एकांतिक कार्यक्रम समझा गया है। भूमि-सुधारों के विधायक परिणाम लाने के लिए श्री तरलोकसिंह के शब्दों में यह आवश्यक है कि "हर क्षेत्र में सघन कृषि अभियान चलाया

जाय, सामग्री, ऋण और अन्य सेवाएं सुलभ की जायं और सहकारी प्रवृत्तियों के संगठन और ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों पर विशेष जोर दिया जाय। किंतु यह मानना होगा कि भूमि-सुधार क़ानूनों के अमल में अनेक त्रुटियों के बावजूद उनके फलस्वरूप हमारे देहाती समाज के सामाजिक और आर्थिक ढांचे में ठोस परिवर्तन हुए हैं। जैसा श्री डेनियल थार्नर ने कहा है, "भूमि सुधारों की सफलताएं आशा से न्यून रही हैं। किंतु भारत की पुरानी कृषि-व्यवस्था समाप्त-प्राय हो रही है।"

सहकारी समाजवाद

समाजवाद और लोकतंत्र की स्थापना के लिए वचनबद्ध आयोजित अर्थ-व्यवस्था में सहकारी आंदोलन अनिवार्यतः आर्थिक जीवन की अधिकांश शाखाओं में संगठन का मुख्य आधार होना चाहिए। इस आंदोलन में निजी पहल सामाजिक कल्याण और व्यापक प्रबंध के लाभों का एक साथ समावेश है। सहकारिता छोटे आदमी को आर्थिक प्रवृत्तियों में परस्पारिक सहायता द्वारा और जनसंख्या के कमजोर अंगों, शोषणकर्त्ता के बिचौलियों को हटाकर उच्चतर जीवन-मान हासिल करने में समर्थ बनाती हैं। अभी तक भारत और अन्य एशियाई और अफ्रीकी देशों में सहकारी आंदोलन मोटेतौर पर कृषि-क्षेत्र तक सीमित रहा है और उसमें भी उसने मुख्यतः ऋण जुटाने का ही काम किया है। हाल के वर्षों में बिक्री और वितरण, उपभोक्ता सामग्री की उपलब्धि, पक्के माल के उद्योगों और छोटी सिंचाई के क्षेत्र में सहकारिता सिद्धांत दाखिल करने पर विशेष जोर दिया गया है। भारत सरकार और योजना आयोग ने अनेक गैर कृषि-क्षेत्रों में सहकारिता को दाखिल करने का निश्चय किया है। इन क्षेत्रों में परिवहन, मकान और निर्माण, उद्योग, व्यापार और वाणिज्य शामिल हैं। उनमें तत्संबंधी विस्तृत योजनाएं तैयार करने के लिए अनेक कार्यकारी दल नियुक्त किये गए हैं। इस प्रकार तेजी से विकासोन्मुख सहकारी क्षेत्र छोटे किसान, नागरिक और उपभोक्ता की आवश्यकता पूरी करने पर

विशेष जोर देता हुआ विकासशील अर्थ-व्यवस्था में सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलानेवाला महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है। तीसरी योजना देश में राजकीय और निजी क्षेत्रों के साथ-साथ एक कार्यक्रम और शक्तिशाली सहकारी क्षेत्र कायम होने की कल्पना करती है। प्रोफेसर अम्लान दत्त ठीक ही कहते हैं, "मनुष्य की आत्मा के संकट का स्थायी हल 'सहकारी समाजवाद' में ही मिल सकता है।"

किंतु यह याद रखना होगा कि सहकारी आंदोलन देश के सामाजिक और आर्थिक ढांचे पर दृष्टव्य प्रभाव तभी डाल सकेगा जब वस्तुतः ईमानदार, कार्यकुशल और सुप्रशिक्षित कार्यकर्त्ता बड़ी संख्या में इस क्षेत्र में संगठित रूप से काम करने के लिए आगे आयें। ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं, जिनमें संपन्न व्यक्तियों ने कृषि, उद्योग और परिवहन में सहकारी संस्थाओं का अपने खुद के व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए दुरुपयोग किया है। ऐसे विवरण मिले हैं कि खुशहाल किसानों ने भूमि-सुधारों के प्रयोग से बचने और सरकार की वित्तीय सहायता का इस धंधे में लाभ उठाने के लिए सहकारी खेती की संस्थाएं स्थापित की हैं। राज्य और समाज का यह कर्त्तव्य है कि वे ऐसी विभिन्न प्रकार की नकली सहकारी संस्थाओं को कड़ाई के साथ खत्म कर दें। संख्या संबंधी विभिन्न लक्ष्यों को पूरा करने की जरूरत के साथ-साथ सहकारी संगठनों की श्रेष्ठता कायम रखने पर उतना ही जोर दिया जाना चाहिए, क्योंकि प्रमाणित ईमानदारी वाले योग्य कार्यकर्त्ताओं के अभाव में इस आंदोलन के प्रशंसनीय उद्देश्य हवा में गायब हो जायंगे।

भूदान और ग्रामदान

आचार्य विनोबा भावे का भूदान और ग्रामदान आंदोलन निस्संदेह स्वावलंबन और सामुदायिक जीवन पर आधारित सहकारी समाज की दिशा में बढ़नेवाला एक महान कदम है। भूदान आंदोलन के अंतर्गत विभिन्न राज्यों में भूमिहीन किसानों में दस लाख एकड़ से अधिक भूमि अबतक वितरित की जा चुकी है। आंदोलन के शुद्ध स्वेच्छिक और गैर सरकारी स्वरूप को देखते हुए वस्तुतः यह सफलता

उल्लेखनीय है । हमारे भूमि-सुधारों के अपर्याप्त अमल के कारण विभिन्न राज्य सरकारें खेतीहरों या थोड़ी जमीनवाले किसानों को बची जमीन बड़ी मात्रा में वितरित नहीं कर सकी हैं । इस प्रकार विनोबाजी ने अपने इस मूल्यवान रचनात्मक कार्य द्वारा वह सफलता हासिल की है जो राज्य सरकारें गत दो पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में कानून की मदद से हासिल नहीं कर सकी हैं ।

ग्रामदान आंदोलन भूदान-यज्ञ से काफी आगे जाता है । कारण, उसके अंतर्गत गांव के सब नहीं तो ७५ प्रतिशत भूस्वामी अपनी जमीन ग्राम-समाज या ग्राम-सभा को सौंप देते हैं । ग्राम-समाज उन्हें अपने जीवन-काल के लिए उनकी जरूरतों के अनुसार जमीन पीछी देता है। जरूरत परिवार के सदस्यों की संख्या को ध्यान में रखकर तय की जाती है । जमीन का एक भाग सामूहिक खेती के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है और उससे गांव की कुछ प्रवृत्तियों के लिए पैसा जुटाया जा सकता है । ग्रामदान में व्यक्तिगत किसानों के सभी स्वामित्व संबंधी अधिकार समाज को सौंप दिये जाते हैं । इस अर्थ में, यह आंदोलन वस्तुत: ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में अहिंसक और समाजवादी आधार पर क्रांति करने में सफल हुआ है । प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल ने लिखा है, "ग्रामदान अभूतपूर्व आंदोलन है और उसके अनेक और जटिल फलितार्थ हैं एवं उसमें बहुत बड़ी संभावनाएं छिपी हैं ।" श्री चेस्टर बोल्स के शब्दों में, "चीनियों ने अपने तानाशाही सामूहिक खेती के जो प्रयोग किये हैं, और कठोर टेढ़ा मार्ग अपनाया है, उसकी तुलना में यह आकर्षक प्रयोग है ।"

आचार्य विनोबा भारत के देहातों की सभी सामाजिक-आर्थिक समस्याएं भले ही हल न कर पाये हों, किंतु इस बारे में तनिक भी संदेह नहीं हो सकता, जैसा कि श्री अशोक मेहता ने लिखा है, "विनोबा ने इन समस्याओं के हल के लिए एक नई दृष्टि, प्रेरणाप्रद तरीका और साधनों एवं साध्य के बीच मौलिक एकसूत्रता प्रदान की है ।" अनेक अर्थों में, ग्रामदान आंदोलन गांधीजी के 'ट्रस्टीपन' के आदर्श का साकार व्यावहारिक रूप है । यह भारत की प्राचीन संस्कृति और परं-

पराओं के अनुसार समाजवादी और सहकारी समाज की स्थापना की दिशा में महान और श्रेष्ठ प्रयोग है। श्री लुई फिशर ने ग्रामदान आंदोलन को 'पूर्व का सबसे अधिक रचनात्मक विचार' कहा है। आचार्य विनोबा के शब्दों में "ग्रामदान में विज्ञान और अध्यात्म का संगम है और वह सामूहिक अहिंसा की ओर ले जाता है।" किंतु ग्रामदान आंदोलन के कुछ ऐसे पहलू हैं, जिन पर शुरू से ही सावधानी के साथ विचार किया जाना चाहिए। अब तक करीब ६००० गांव ग्रामदान में प्राप्त हुए हैं और उनकी संख्या उड़ीसा और असम में अधिक है। अनेक राज्य-सरकारों ने इस आंदोलन को मदद देने के लिए ग्रामदान कानून बनाये हैं और गांव-सभा को प्रशासन और वित्तीय सहायता के लिए एक कानूनी ईकाई स्वीकार किया है। फिर भी यह आंदोलन ग्रामीण भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव नहीं डाल पाया है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस पर थोड़े से चुने हुए जिलों में सघन और आयोजित ढंग से प्रयोग नहीं किया गया। मालूम हुआ है कि अब सर्व-सेवा-संघ कुछ ग्रामदानी क्षेत्रों में सघन ढंग पर काम करेगा, ताकि ग्राम-पुनर्गठन के नये तंत्र की दृश्य तस्वीर स्थायी आधार पर विकसित हो सके। ये कतिपय आदर्श ग्रामदानी गांव निश्चय ही अन्य क्षेत्रों को पुनर्गठन का ऐसा ही प्रयोग करने को प्रेरित करेंगे। उस दशा में यह आंदोलन दूसरों को प्रभावित करेगा और देश के अनेक भागों में फैलेगा। स्वतंत्रता, समानता, स्वावलंबन, सहकारिता और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित अहिंसक सामाजिक अर्थ-व्यवस्था का नया संदेश देगा। आखिरी निष्कर्ष श्री चेस्टर बोल्स के शब्दों में यह है कि, "लोगों की शक्तियों को उन्मुक्त करने से ही गांवों का विकास हो सकेगा।"

५

अवसर की समानता

सदियों से समानता की कल्पना समाजवादी आदर्शवाद की 'मूलभित्ति' रही है। भारत के संविधान की भूमिका में भी सब नागरिकों को 'दर्जे और अवसर की समानता' का आश्वासन दिया गया है। नेहरूजी ने लिखा है, "यह बिल्कुल प्रकट है कि समानता का न यह अर्थ है और न हो सकता है कि हर व्यक्ति शारीरिक, बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से समान है या समान बनाया जा सकता है, किंतु उसका यह अर्थ अवश्य है कि सबको समान अवसर सुलभ हों और किसी भी व्यक्ति या समूह के रास्ते में कोई राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक बाधा न हो।" इसका यह अर्थ है कि हमारी मानवता में बुनियादी श्रद्धा है और यह विश्वास भी कि कोई भी व्यक्ति, समूह अथवा क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो पर्याप्त अवसर मिलने पर अपने तरीके से संतोषजनक प्रगति न कर सके। प्रोफेसर लास्की ने स्पष्ट किया है कि "पर्याप्त अवसरों" का मतलब इस अर्थ में अवसरों की समानता नहीं हो सकता कि "मूलभूत अवसर समान" हैं। मनुष्य की प्रारंभिक विशेषताएं कदापि समान नहीं हैं। किसी भी दशा में, समाजवाद में हर व्यक्ति को अपनी मूलभूत क्षमताओं और संभावनाओं के अनुसार सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक विकास का समान अवसर मिलना चाहिए।

समानता और गुणशीलता

इस प्रकार समानता के आदर्श की शाब्दिक या यांत्रिक ढंग से व्याख्या नहीं की जानी चाहिए। उसके अनुसार सभी नागरिकों को बिना किसी जाति, धर्म, लिंग अथवा भाषा के भेद के उपलब्ध राष्ट्रीय साधनों की मर्यादा में अपनी शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक और आध्या-

त्मिक शक्तियों का अधिकतम विकास करने के पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए। चूंकि व्यक्तियों की जन्मागत शक्तियां अपनी विरासत और वातावरण के अनुसार होंगी, इसलिए समानता की कल्पना देश के नागरिकों के गुण-विकास की दृष्टि से असंगत नहीं हो सकती। जैसा कि नेहरूजी ने कहा है, "अंत में मनुष्य के गुणों का ही महत्व होता है।" वास्तव में यह अवसरों की समानता ही है, जो लोगों को स्वतंत्रता और भाईचारे का जीवन जीने की शक्ति देती है, जीवन को समृद्ध बनाती है और समानता को श्रेष्ठता प्रदान करती है।

भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के अनुसार समानता का आदर्श वेदान्त के दर्शन-शास्त्र पर आधारित है, जो आत्मा या 'प्राण-शक्ति' के अर्थ में सब प्राणियों की एकता में विश्वास करता है। मेरे विचार से, भारतीय समाजवाद का सार-तत्त्व ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक में ही मौजूद है, जो इस प्रकार है :

ईशावास्यमिदम् सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात्, इस जगत् में जो कुछ भी जीवन है, वह सब ईश्वर का बनाया हुआ है। इसलिए तू ईश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर। किसी के धन की कामना न कर।

दार्शनिक आधार

डा० सम्पूर्णानन्द ने भारत में समाजवाद का समन्वित ढांचा विकसित करने के लिए 'दार्शनिक आधारों' पर विचार करने की आवश्यकता पर बहुत अधिक जोर दिया है। वह लिखते हैं, "समाजवाद केवल ऐसी राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली नहीं है जिसका उद्देश्य शोषण का अंत करना और वर्ग-संघर्ष को समाप्त करना है और जो इस प्रकार लोगों के सामान्य जीवन-मान को ऊंचा उठाना चाहती है और उन्हें बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर पर विकास करने का अवकाश देती है।........ये समाजवाद के ताने-बाने और फलितार्थ हैं, जो उसके दर्शनशास्त्र से सहज निकलते हैं। किंतु उसका यह दर्शनशास्त्र ही है जो

समाजवाद और विशुद्धतया व्यावहारिक विचारों पर आधारित सार्वजनिक हित की अन्य योजनाओं में अंतर करता है।" जैसा कि प्रोफेसर जे० के० मेहता ने कहा है, "अर्थशास्त्रियों को भी 'अनेक में एक की खोज' करनी पड़ती है।"

भारत में समाजवाद विषयक इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण का ही यह नतीजा है कि समाज में अवसर की समानता और समतामूलक परिस्थितियां शांतिमय और अहिंसक तरीकों से कायम करने की बात सोची जाती है, घृणा और वर्ग-संघर्ष पर आधारित हिंसक साधनों से नहीं। गांधीजी मानते थे कि केवल सत्य-प्रिय, अहिंसक और शुद्ध-हृदयी-समाजवादी ही भारत में और दुनिया में समाजवादी समाज की स्थापना कर सकेंगे। नेहरूजी ने बार-बार इस पर जोर दिया कि समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिए सामाजिक और आर्थिक समस्यायों को शुद्ध साधनों से हल करने की कोशिश की जाय। उन्होंने कहा है, "इन संघर्षों के अस्तित्व से इंकार करना या उनकी उपेक्षा करना एक बेहूदा बात है, किंतु हम उनके प्रति संघर्ष का नहीं, शांति का दृष्टिकोण अपनाकर उनके समाधान की कोशिश कर सकते हैं।"

न्यूनतम जीवन-मान

अवसर की समानता सुलभ करने के लिए हमें सभी नागरिकों को जीवन की आवश्यकताएं, यथा, खाना, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा सुविधाएं सुलभ करनी होंगी। यह बिल्कुल जाहिर है कि समस्त जनता को ये बुनियादी आवश्यकताएं राष्ट्र के सीमित साधनों को देखते हुए अमुक स्तर पर पूरी की जा सकती हैं। फिर अगर सभी स्त्री-पुरुषों के लिए एक न्यूनतम जीवन-मान मुहय्या न किया जा सकेगा तो भारत में समाजवाद एक खोखला नारा मात्र रहेगा। योजना-आयोग के ताजा अध्ययनों से पता चलता है कि हमारी जनसंख्या के करीब ६० प्रतिशत भाग की न्यूनतम आय का स्तर प्रति कुटुम्ब १०० रु० मासिक से कम है। द्वितीय श्रम-जांच-समिति की रिपोर्ट कतिपय अतुलनीय सामग्री के बावजूद यह प्रकट करती है कि भूमिहीन खेत-मजदूरों की

आर्थिक अवस्था में दो पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में मुश्किल से ही कोई परिवर्तन हुआ है और इनकी देहाती आबादी में काफी बड़ी संख्या है। डा० वी० के० आर० वी० राव ने भी पता लगाया है "कि बुनियादी अर्थ में इस अवधि में आर्थिक परिस्थितियां कमजोर हुई हैं" और इसका कारण यह है कि भूमि-सुधारों के फलस्वरूप ग्राम अर्थ-व्यवस्था में संगठनात्मक परिवर्तन हुए हैं और उनके कारण बेदखलियां भी हुई हैं। शहरी क्षेत्रों में गंदी बस्तियों में रहनेवालों, मेहतरों और सड़कों पर रहनेवालों की स्थिति काफी शोचनीय है और पंचवर्षीय योजनाएं उनके जीवन पर कोई ठोस प्रभाव नहीं डाल सकी हैं। सब नागरिकों के लिए न्यूनतम जीवन-मान सुलभ करने की दृष्टि से देश की स्थिति कितनी गंभीर है, यह इन तथ्यों से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है, और न्यूनतम जीवन-मान के बिना वे सादा किंतु उत्तम जीवन नहीं बिता सकते।

समृद्धि का वितरण

सभी अविकसित अर्थ-व्यवस्थाओं में आम जनता के जीवन-मान को ऊंचा उठाने के लिए आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करने की कोशिशें की जा रही हैं। किंतु आबादी के दुर्बल अंगों के लिए विधायक और प्रत्यक्ष सहायता के कार्यक्रम के अभाव में, केवल आर्थिक विकास की रफ्तार तेज करने मात्र से दरिद्रतम वर्गों के आर्थिक जीवन में अनिवार्यतः सुधार नहीं हो सकता। आचार्य विनोबा की यह निश्चित राय है कि 'समृद्धि प्रवाह' का यह सिद्धांत स्थिति की जटिल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकेगा। देश के शीघ्रगामी विकास के कारण जो संपत्ति थोड़े लोगों के हाथों में इकट्ठी होती है, वह अनिवार्यतः आम जनता तक नहीं पहुंचती। प्रोफेसर जे० के० गालब्रेथ का कहना है कि उत्पादन बढ़ने का अपने-आप यह परिणाम नहीं हो सकता कि उन लोगों को लाभ मिलेगा जो भवन की निचली से निचली सीढ़ी पर हैं और जिन्हें चीजों की सबसे अधिक आवश्यकता है।" नेहरूजी ने लिखा है कि यूरोप में औद्योगिक क्रांति के बाद "अधिकांश संपत्ति ऊंची श्रेणी के धनी लोगों के हाथों में रही और उसका बहुत थोड़ा अंश गरीब वर्गों तक पहुंच

पाया और उनका जीवन-मान बहुत कम उन्नत हुआ ।" यही बात अब भारत में और एशियाई तथा अफ्रीकी देशों में चरितार्थ हो रही है। इसलिए समाजवादी समाज-व्यवस्था के अंदर भारत के लोगों को न्यूनतम जीवनमान सुलभ करने की बुनियादी समस्या पर कुछ क्रांतिकारी विचार करने की आवश्यकता है ।

काम का अधिकार

सभी लोग यह मानते हैं कि देश के नागरिकों को खाना, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई विषयक न्यूनतम जीवन-मान तभी सुलभ किया जा सकता है, जब उन्हें लाभदायी रोजगार दे सकने योग्य आर्थिक परिस्थितियां पैदा की जायंगी । भारत का संविधान हर व्यक्ति का 'आजीविका के पर्याप्त साधन' पाने का बुनियादी अधिकार स्वीकार करता है और कहता है कि स्त्री-पुरुष दोनों को समान काम के लिए समान वेतन मिलना चाहिए । अतः समाजवादी लोकतंत्र को अपने सब नागरिकों को आत्म-सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ उत्पादक काम के जरिये अपनी आजीविका कमाने के पर्याप्त अवसर देने चाहिए । गांधीजी ने कहा है, "भूखों मरनेवाले और बेकार लोगों के सामने काम और मजदूरी की शक्ल में भोजन बनकर ही ईश्वर प्रकट हो सकता है ।" प्रोफेसर गालब्रेथ की राय है कि "बेकारी के साथ अधिक उत्पादन की अपेक्षा पूरा रोजगार अधिक वांछनीय है ।" प्रोफेसर हेरल्ड लास्की की दृढ़ मान्यता है कि आर्थिक समानता और स्वतंत्रता व्यर्थ होगी, यदि आदमी को अपनी रोज की रोटी कमाने का अवसर सुलभ न हो । वह कहते हैं, "हर नागरिक को बेकारी और अभाव के सतत भय से मुक्ति मिलनी चाहिए । कारण, यह भय संभवतः और किसी अभाव की अपेक्षा व्यक्तित्व की समस्त शक्ति को खा जाता है ।"

यह कितना विचित्र है कि अमरीका जैसे अत्यधिक उद्योग-प्रधान और समृद्ध देश में बड़े पैमाने पर बेकारी विद्यमान है । मार्च १९६३ में कांग्रेस के नाम अपने संदेश में तत्कालीन राष्ट्रपति केनेडी ने बेकारी को अमरीका की 'पहले नवम्बर की आर्थिक समस्या' बताया था । उन्होंने

कहा था, "यद्यपि अमरीकी अर्थव्यवस्था अधिक कार्यक्षम हो रही है, तथापि वह बढ़ती हुई श्रमशक्ति और आबादी के लिए रोजगार जुटाने में कम सफल हो रही है। बेकारी की वर्तमान रफ्तार के हिसाब से ५५ लाख व्यक्ति अर्थात् उपलब्ध श्रमशक्ति का ७ प्रतिशत भाग रोजगार-विहीन हो जायगा।" जोन मोरगन कहते हैं, "दुनिया के इस सबसे धनी देश में नये ४० हजार व्यक्ति प्रति सप्ताह अपनी 'वृत्ति' खो देते हैं और उन्हें दूध-चूर्ण, वनस्पति-मक्खन, पीत अन्न और आटे जैसी बची हुई वस्तुओं पर निर्वाह करना होता है; लोगों की पंक्तियां आहार पाने के लिए मुक्ति-सेना के गलियारों में गुजरती रहती हैं।" प्रोफेसर मिरडिल की नई पुस्तक 'प्रचुरता की चुनौती' में प्रचुर समृद्धि के मध्य भीषण गरीबी की विचित्र अमरीकी उलझन पर विशद प्रकाश डाला गया है।

भारत में, यह स्वीकार करना होगा कि जो लोग पारिश्रमिक के साथ रोजगार की मांग करते हैं, उन सबको रोजगार देने की संभावना अभी नजर नहीं आ रही है। दूसरी योजना के अंत में बेकार लोगों की संख्या करीब ९० लाख थी। तीसरी योजना अवधि में यह अनुमान किया जाता है कि मोटे तौर पर १ करोड़ ४० लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार सुलभ किया जायगा, हालांकि इस अवधि में नयी श्रमशक्ति १ करोड़ ७० लाख होने का अनुमान है। अतः तीसरी योजना में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम यह है कि बेकार जन-शक्ति के लिए, विशेषकर पिछड़े क्षेत्रों में ग्रामीण कार्य-केंद्रों की बड़ी संख्या में स्थापना की जाय। अगर सब ठीक-ठाक रहा तो हम देहाती कार्य-केंद्रों की इन परियोजनाओं में दस लाख अतिरिक्त आदमियों को खपा सकेंगे। फिर भी ९० लाख बेकार व्यक्तियों की समस्या हमारे सामने मुंह बाये खड़ी रहेगी। फलस्वरूप, विविध प्रकार की और वैज्ञानिक कृषि के साथ-साथ ग्राम-उद्योगों के सघन विकास की कतिपय परियोजनाएं शुरू करने के क़दम उठाये जा रहे हैं। वास्तव में समस्या इतनी विशाल है कि दिमाग चकरा जाता है। किंतु रोजगार की मांग करनेवाले सब लोगों के लिए काम सुलभ किये बिना भारत में अथवा अन्य किसी देश में समाजवाद

घुन लगे अन्न के समान होगा । इस नाजुक समस्या को हल करने के लिए कुछ नये तरीके काम में लाने होंगे ।

काम बनाम बेकार-वृत्ति

अधिकतर पश्चिमी देशों में राज्य उन तमाम नागरिकों को, जिनके नाम बेकारों की सूची में दर्ज होते हैं, साप्ताहिक भत्ता या 'बेकार वृत्ति' देता है । किंतु इस बारे में दो रायें नहीं हो सकतीं कि लोगों को बेकारी-भत्ता देने के बजाय उत्पादक काम देना कहीं अधिक अच्छा है । बर्नार्ड शा के अनुसार, नरक की सर्वोत्तम व्याख्या है 'हमेशा की छुट्टी' । काम के अभाव के फलस्वरूप न केवल शारीरिक, बल्कि मानसिक शक्ति का भी क्षय होता है; वास्तव में तो मनुष्य के सारे व्यक्तित्व का ही ह्रास होता है । इसके अलावा, भारत की यह दीर्घ सांस्कृतिक परंपरा रही है कि मनुष्यों को किसी-न-किसी प्रकार के शारीरिक श्रम से अपनी आजीविका कमाना चाहिए । गीता का यह उपदेश है कि जो बिना श्रम किये खाता है वह 'चोर' है । अपनी आजीविका कमाने के लिए मनुष्य जो शारीरिक श्रम करता है, उसे गांधीजी ने रोटी का श्रम कहा है । इसलिए तीसरी योजना शहरों और गांवों दोनों में तमाम नागरिकों को लाभदायक रोजगार देने की आवश्यकता पर जोर देती है, भले ही यह रोजगार स्थानीय दरों पर दिया जाय, जो सामान्य सरकारी दरों से कुछ कम हो सकती हैं । आर्थिक दृष्टि से, विकासशील देश अपने बेकार नागरिकों को किसी-न-किसी प्रकार का रचनात्मक श्रम करने का अवसर दिये बिना बेकार-वृत्ति मुश्किल से ही दे पायेंगे । बिना काम के उन्हें सहायता देना इन देशों के सीमित साधनों पर बोझ होगा और उनके श्रम से राष्ट्र को जो उत्पादन प्राप्त होगा, वह उनके पिछड़े देश को निश्चय ही ठोस लाभ सुलभ करेगा ।

शैक्षणिक सुविधाएं

समाज में आर्थिक समानता की स्थापना करने के लिए व्यापक शैक्षणिक सुविधाओं के द्वारा, खासकर तकनीकी और व्यावसायिक

शिक्षा द्वारा पर्याप्त रोजगार सुलभ किया जा सकता है। प्रोफेसर गुन्नार मिरडल कहते हैं "कि शिक्षा का आम स्तर उन्नत करके ही पूरे रोजगार के साथ वित्तीय और स्थिरता की समस्या पूर्णतया संतोषजनक रीति से हल की जा सकती है।" इस दृष्टि से तीसरी योजना ६ से ११ वर्ष की उम्र के तमाम बच्चों के लिए निश्शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करती है; ११ से १४ वर्ष की उम्र के बच्चों के लिए शिक्षा का प्रबंध चौथी और पांचवीं योजनाओं में किया जायगा। यह सोचा गया है कि तीसरी योजना के अंत तक देश के तमाम प्राथमिक स्कूलों में बुनियादी ढंग की शिक्षा शुरू कर दी जाय, जिसमें उत्पादक धंधे का प्रशिक्षण देने की कुछ-न-कुछ व्यवस्था भी हो। दुर्भाग्यवश, हमारी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की कल्पना पर अमल करने में अधिक सफलता नहीं मिल सकी है। यह सोचना गलत होगा कि गांधीजी बच्चों को कतवैया और बुनकर बनाना तथा बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अभावग्रस्त रखना चाहते थे। गांधीजी ने यह बिल्कुल साफ कर दिया था कि वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक समस्त शिक्षा दस्तकारी के द्वारा देना चाहते हैं। गांधीजी ने कहा था कि बुद्धिपूर्वक किया गया शारीरिक श्रम "बौद्धिक विकास का सर्वश्रेष्ठ साधन है।"

विनोबाजी सामाजिक दृष्टि से शिक्षा में उत्पादक श्रम को बहुत कीमती मानते हैं। उनके कथनानुसार 'पठन और श्रम' को जुदा करने से सामाजिक अन्याय जन्म लेता है। 'कुछ लोगों को केवल पढ़ने का काम करना होता है और दूसरे लोग केवल कठोर श्रम करते हैं और फलतः समाज दो टुकड़ों में बंट जाता है।' तीसरी योजना की सिफारिश है कि तमाम प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में सादी दस्तकारियों, प्रवृत्तियों और सामाजिक सेवा को पाठ्यक्रम में दाखिल किया जाय। बुनियादी शिक्षा को स्थानीय समाज की विकास प्रवृत्तियों के साथ जोड़ने की हर कोशिश की जाय। स्कूल और समाज के मध्य यह घनिष्ठ संबंध शिक्षा-संस्थाओं और विकास-कार्यों दोनों को समृद्ध करेगा। श्री थियोडर ब्रामेल्ड ने जोर देकर ठीक ही कहा है कि, "शिक्षा तभी रचनात्मक शक्ति बन सकती है जब वह संस्कृति की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक

रचनात्मक शक्तियों के साथ जुड़ जाती है; हर छोटे-बड़े समुदाय के विकासोन्मुख संघर्ष रत जीवन का अंग बन जाती है।" विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भी यह मान्यता थी कि "हमारी शिक्षा-संस्थाओं को समाज की केंद्र विंदु होना चाहिए; उसके विविध धंधों के साथ उसका जीवित संपर्क और गठबंधन होना चाहिए।" नेहरूजी ने प्रधान-मंत्री की हैसियत से इस ओर जोरों से ध्यान आकर्षित किया कि सब शिक्षा संस्थाओं को किसी-न-किसी प्रकार का उत्पादन काम हाथ में लेना चाहिए, जिससे वर्तमान संकटकाल में विद्यार्थियों के भीतर अनुशासन का वातावरण पैदा किया जा सके। उन्होंने कहा था, "बुनियादी शिक्षा अथवा उत्पादक काम से जुड़ी हुई शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह युद्ध, अनुशासन और प्रशिक्षण तीनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।"

तकनीकी शिक्षा

वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा के विस्तार की योजनाओं पर भी अमल किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों को वर्तमान स्थिति में सुरक्षा-जरूरतों को पूरा करने की दृष्टि से और पुष्ट किया गया है। तीसरी योजना के अंत में इंजीनियरी और तकनीक शास्त्र के स्नातकीय पाठ्य-क्रमों के लिए प्रविष्ट होनेवाले छात्रों की वार्षिक संख्या १३,८०० से बढ़कर १९,००० और डिप्लोमा पाठ्यक्रमों के लिए २,५०,०० से ३७,००० से अधिक हो जायगी। देश की औद्योगिक प्रशिक्षण देनेवाली संस्थाओं में प्रवेश संख्या तीसरी योजना के दौरान ४२,००० से एक लाख हो जायगी। गरीब किंतु सुपात्र छात्रों को तकनीनी शिक्षा की इन बढ़ी हुई सुविधाओं का लाभ पहुंचाने की दृष्टि से, भारत सरकार ने काफी बड़ी संख्या में छात्र-वृत्तियों का प्रबंध किया है। दूसरी योजना के अंत में अनुमान किया जाता है कि इंजीनियरी और तकनीक शास्त्र के डिप्लोमा और स्नातकीय छात्रों को ६००० छात्रवृत्तियां दी जा रही थीं। तीसरी योजना के अंत में उनकी संख्या ३२,००० से अधिक हो जाने की संभावना है। दस्तकारों की औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में, सन् १९६०-६१ में छात्रवृत्तियों की संख्या १४ हजार थी। सन् ६५-६६

में यह संख्या ३६,००० तक पहुंचने की आशा है। जहांतक कला, विज्ञान, वाणिज्य की विश्वविद्यालयी शिक्षा का संबंध है, दूसरी योजना के अंत में छात्रवृत्तिओं पर ६ करोड़ रुपया खर्च करने का अनुमान था और १,५०,००० छात्रों को छात्र-वृत्तियां मिल रही थीं। तीसरी योजना के अंत तक छात्रवृत्तियों पर १३ करोड़ रुपया खर्च हो चुका होगा और २,००,००० विद्यार्थियों को मदद मिल रही होगी। पूर्व विश्वविद्यालयी स्तर पर सन् ६५-६६ में १४ करोड़ रुपया छात्रवृत्तियों पर खर्च होगा और उनसे लाभ उठानेवाले छात्रों की संख्या १३ लाख हो जायगी। वर्तमान अनुमान के अनुसार तीसरी योजना की अवधि में विभिन्न शिक्षा-स्तरों की विभिन्न और नई योजनाओं के अंतर्गत छात्रवृत्तियों पर करीब १ अरब ४० करोड़ रुपया खर्च किया जायगा।

भारत सरकार ने सुपात्र छात्रों को छात्रवृत्तियों के अलावा ऋण देने की योजना भी मंजूर की है। इस काम के लिए ६ करोड़ रुपये की राशि रखी गई है। ये ऋण छात्रों को उपयुक्त रोजगार मिलने के बाद अनेक किश्तों में अदा करने होंगे। नवयुवकों को शिक्षा व्यवसाय अपनाने के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से, यह तय किया गया है कि जो छात्र दस वर्ष शिक्षक के रूप में राष्ट्र की सेवा कर चुकेंगे, उनसे सरकार प्रदत्त ऋण वसूल नहीं करेगी।

स्वास्थ्य-कार्यक्रम

तीसरी योजना में समस्त जनता के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास करने के लिए अनेक कार्यक्रम शामिल किये गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या बढ़ाई जा रही है, ताकि सब गांवों को बुनियादी चिकित्सा-सुविधाएं मिल सकें। यह जानकर संतोष होता है कि गत दशाब्दि में जीवन-आयु का औसत ३२ वर्ष से बढ़कर ४७ वर्ष हो गया है।

मलेरिया और चेचक जैसे छूत के रोगों को समाप्त करने के कार्य-क्रमों के कारण मृत्यु-दर काफी कम हो गई है। अस्पतालों और दवा-खानों तथा अस्पतालों में रोगी-शैयाओं की संख्या गत दस वर्षों में

क्रमशः १३,००० से और १,८६,००० हो गई है और इस संख्या में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में और भी वृद्धि करने की कोशिशें की जा रही हैं। तीसरी योजना में स्वास्थ्य-शिक्षा विशेषज्ञ तैयार करने का प्राविधान है, ताकि देशव्यापी आधार पर स्कूलों और वयस्क केंद्रों में स्वास्थ्य कार्यक्रम शुरू किये जा सकें। स्वास्थ्य योजनाओं में चिकित्सा की बजाय रोगों की रोक-थाम पर विशेष जोर दिया जा रहा है।

देहाती क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाएं, खासकर स्वास्थ्यकर पीने के पानी और संपर्क-सड़कों की सुविधाएं करोड़ों लोगों के लिए सुलभ की जा रही हैं। इन कार्यक्रमों के लिए अर्थ-व्यवस्था अब भी नाकाफी है किंतु देहातों में ये सुविधाएं यथासंभव शीघ्र सुलभ करने के लिए हर संभव उपाय किया जायगा।

परिवार-नियोजन

विकासोन्मुख देशों की आर्थिक प्रगति में इस समय ऊंची जन्म दर के कारण बाधा पड़ रही है। सतत बढ़ती जानेवाली आबादी के लिए जीवन की सुविधाएं उपलब्ध कराना गुरुत्तर काम हो जाता है। जिन देशों में जन-संख्या वृद्धि की दर ऊंची होगी, स्वभावतः उनमें प्रति व्यक्ति की औसत आय में स्वल्प सुधार होगा। श्रीसोसेफ मेरियन के शब्दोंमें इसका कारण यह है कि "राष्ट्रीय आय में होनेवाली वार्षिक वृद्धि का बड़ा भाग जन-संख्या की वार्षिक वृद्धि पर खर्च हो जायगा।" अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और रूस जैसे देशों में भी दूसरे महायुद्ध के बाद से जन- संख्या की वृद्धि की दरें काफी ऊंची रही हैं हालांकि उतनी ऊंची नहीं जितनी कि अल्पविकसित देशों में हैं कि जहां परिवार-नियोजन के व्यापक व्यवहार और तत्संबंधी सुविधाओं के बावजूद ऐसा हुआ है।

हमारे अपने देश में, जन-संख्या वृद्धि की दर सतत बढ़ रही है। दूसरी योजना के शुरू में वह १.२५ प्रतिशत अनुमान की गई थी और तीसरी योजना के शुरू में वह लगभग २ प्रतिशत थी। वर्तमान संकेतों के अनुसार भारत की जन-संख्या सन् १९६६ में ४९ करोड़ २० लाख, सन् १९७१ में ५५ करोड़ ५० लाख और सन् १९७६ में ६२ करोड़

५० लाख हो जायगी । इसलिए 'जन-संख्या के इस विस्फोट' पर तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए ।

सौभाग्य से परिवार-नियोजन के कार्यक्रम शहरों और गांवों दोनों जगह काफी लोकप्रिय हुए हैं । कुछ भी हो, भारत की जनता परिवार-नियोजन या संतति-निरोध के विचार का मुश्किल से ही विरोध करती है । परिवार-नियोजन के कार्यक्रम को भारत-सरकार और योजना-आयोग ने उच्च प्राथमिकता दी है और हाल में परिवार-नियोजन पर तीसरी योजना के प्रावधान को १५ करोड़ रुपये से बढ़ाकर ५० करोड़ कर दिया गया है । तीसरी योजना की अनुमानित परियोजनाओं के अनुसार परिवार-नियोजन-केंद्रों की संख्या दूसरी योजना के अंत के समय १,८०० से बढ़कर करीब ८,२०० हो जायगी । इसमें से करीब ६,१०० केंद्र ग्रामीण क्षेत्रों में और २,१०० शहरी क्षेत्रों में होंगे । शहरों के संबंध में यह प्रस्ताव है कि परिवार-नियोजन की सलाह देने, सामग्री का वितरण करने और यथासंभव वंध्यकरण के कामों में निजी डाक्टरों की सेवाओं का लाभ उठाया जाय ।

किंतु यह जरूरी है कि परिवार-नियोजन के कार्यक्रमों को समग्र विकास की नीति के साथ जोड़ दिया जाय । दूसरे शब्दों में, श्री पियरे मूसे के कथनानुसार "संतति-नियमन और आर्थिक विकास साथ-साथ चलना चाहिए ।" यह सुविदित सामाजिक संकेत है कि गरीब वर्गों में जन्म-संख्या की दर सामान्यतः ऊंची है और जीवन-मान ऊंचा होने के साथ उसमें कमी होने लगती है ।

अन्ततः, शिक्षण-कार्यक्रम के विस्तार पर समस्त परिवार-नियोजन-आंदोलन की सफलता निर्भर करती है । इसके अलावा, जैसा कि तीसरी योजना में इस बात पर जोर दिया गया है, "नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों, संयम और ऐसी सामाजिक नीतियों पर सबसे अधिक बल दिया जाय, जिनमें स्त्रियों की शिक्षा, उनके लिए रोजगार के नये अवसर और विवाह की आयु बढ़ाने आदि की बातें शामिल हैं ।"

सामाजिक सुरक्षा

समाजवादी समाज में सब नागरिकों के लिए जीवन की बुनियादी जरूरतें सुलभ करने के जो विविध उपाय किये गए हैं, उनके बावजूद राज्य को अल्प सुविधाभोगी वर्गों के लिए कुछ सामाजिक सुरक्षा-योजनाओं का श्रीगणेश करना चाहिए। अमरीका, ब्रिटेन, रूस और जर्मनी जैसे विकसित देशों में ये कार्यक्रम काफी विकसित हो चुके हैं। भारत में औद्योगिक श्रमिकों और सरकारी कर्मचारियों के लिए कुछ सामाजिक सुरक्षा के उपाय शुरू किये गए हैं और निराश्रितों, अनाथों और शारीरिक दृष्टि से अपंगों को थोड़ी सहायता दी जाने लगी है। चौथी और अगली पंचवर्षीय योजनाओं में इन उपायों का काफी बड़े पैमाने पर विस्तार करना होगा।

नशाबंदी का अर्थ-शास्त्र

इस विषय में यह उल्लेख करना उचित होगा कि भारत में नशाबंदी-कार्यक्रम मुख्यतः जन-संख्या के दरिद्रतम वर्गों की आर्थिक अवस्था सुधारने की दृष्टि से शुरू किये गए हैं। गांधीजी का नशाबंदी का आग्रह एक महात्मा का 'नैतिक जब्त' नहीं था। वह हरिजनों, आदिवासियों, मजदूरों और मछुओं की गंभीर हित-चिंता से प्रेरित था, जो नशाबंदी के अभाव में अपनी अल्प आय का काफी भाग शराब पीने पर खर्च कर देते हैं। यह अनुमान किया गया है कि आबकारी-कर से राज्यकोष को मिलने-वाले हर रुपये पीछे नशाखोर मद्यसेवन पर करीब ३ रुपया खर्च करता है। इस समय देश के उन सभी राज्यों की, जहां शराब पीने की पूरी या अधूरी छूट है, आबकारी-कर से वार्षिक आय करीब ५० करोड़ रुपया होगी। इसका यह अर्थ हुआ कि लोगों, विशेषकर गरीब लोगों को प्रति-वर्ष अपनी गाढ़ी कमाई में से करीब १५० करोड़ रुपया बर्बाद करने का प्रोत्साहन दिया जाता है। शराबखोरी की यह बुराई गरीब लोगों की जेबों से यह विशाल राशि ही नहीं चुराती, बल्कि उनके शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का काफी ह्रास करती है।

इसलिए मैं विकासशील अर्थ-व्यवस्था के छिद्रों को बंद करने के

लिए नशाबंदी को सामाजिक आयोजन का व्यावहारिक कार्यक्रम मानता हूं। आर्थिक विकास की दर और प्रति व्यक्ति की औसत आय के बारे में तब हमारे अनुमान अवास्तविक हो जाते हैं जब हम देखते हैं कि दुर्बल वर्गों की बढ़ी हुई आमदनी का काफी बड़ा भाग शराबखोरी की आदत के कारण नाली में बह जाता है। यही कारण है कि तीसरी योजना ने नशाबंदी को कल्याणकारी कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण माना है और राज्य-सरकारों से अनुरोध किया है कि वे वित्तीय आधार पर नशाबंदी आंदोलन को धीमा न करें। उसमें कहा गया है, "जाहिर है कि वित्तीय कारणों से ही उस सामाजिक कार्यक्रम में बुनियादी रुकावट नहीं पड़ने दी जा सकती, जिसे सारे देश के आम लोगों के हित में आवश्यक समझा जाता है।"

मूल्यों को स्थिर रखना

यह बात हमेशा स्मरण रखनी होगी कि समाजवादी समाज में लोग जिस बुनियादी सामाजिक सुरक्षा की अपेक्षा करते हैं, वह यह है कि खाना, चीनी, कपड़ा, मकान, मिट्टी का तेल, खाने के तेल जैसी आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को स्थिर रखा जाय, जिनका कि सामान्य लोग उपभोग करते हैं। तीसरी योजना में इस बात पर जोर दिया गया है कि इन आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को ऐसे स्तर पर स्थिर रखा जाय, जो उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के लिए न्यायपूर्ण और उचित हो। संकटकालीन स्थिति के कारण इन कीमतों पर अंकुश रखना और भी जरूरी हो गया है। वास्तव में, घरेलू मोर्चे की लड़ाई में हमारी सफलता मुख्यतः इस पर निर्भर करेगी कि हम आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों को एक निश्चित समय तक उचित स्तर पर कितना स्थिर रख सकेंगे। अपनी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में, महंगाई की बाढ़ को रोके बिना हम अपनी विकास योजनाओं को सुरक्षा तैयारियों के साथ यथार्थवादी तरीके से नहीं जोड़ सकेंगे। युद्ध के दिनों में बढ़ती हुई कीमतों का उर्ध्वगामी चक्कर राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था की कमर तोड़ दे सकता है और लोगों के साहस को भयंकर रूप में क्षीण कर देता है।

इसके अलावा महंगाई हमेशा अत्यंत विषमतापूर्ण होती है। वह दरिद्रतम और निर्बलतम वर्गों पर सबसे अधिक खराब असर डालती है। इसलिए, समाजवादी समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण है कि नागरिकों को जीवन की आवश्यकताएं ऐसी कीमतों पर सुलभ की जायं जो लोगों की सामर्थ्य के भीतर हो। भारत-सरकार ने कीमतों के बारे में विशेष समिति नियुक्त की है जो आवश्यक वस्तुओं की कीमतों के प्रवाह पर निश्चय ही निगाह रखेगी और सरकार को समय-समय पर उन आवश्यक वस्तुओं की कीमतों पर समुचित नियंत्रण और नियमन रखने की दृष्टि से आवश्यक कदम उठाने के बारे में सलाह देगी।

अंत्योदय की दृष्टि

यदि न्यूनतम आय-समूहों के जीवन-मान को न्यूनतम आर्थिक स्तर तक तात्कालिक रूप से ऊंचा नहीं उठाया जायगा तो दर्जे और अवसर की समानता भ्रामक होगी। इसलिए गांधीजी समाज के निम्नतम वर्ग की जरूरतों पर विशेष ध्यान देते थे। भारत जैसे अल्प-विकसित देश में समाजवादी विचारधारा की यही अंत्योदयी दृष्टि होनी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में, तीसरी योजना विभिन्न परियोजनाओं द्वारा भूमिहीन खेतीहर श्रमिकों की आर्थिक दशा सुधारने पर जोर देती है। यह अनु-मान किया जाता है कि सन् १९६५-६६ तक कृषि श्रमिकों के करीब ७,००,००० परिवार करीब ५० लाख एकड़ भूमि पर बसा दिये जायंगे। भूमिहीन लोगों को देहातों के भीतर सहकारिता के आधार पर लघु, ग्राम और कुटीर उद्योगों में लगाने की हर संभव कोशिश की जायगी। पूरक ग्राम्य-उद्योग-कार्यक्रम दुर्बल वर्गों को वर्ष के अधिकतर दिनों में लाभदायी रोजगार प्राप्त करने में मदद देंगे। राज्य सरकारों को कहा गया है कि वे कृषि श्रमिकों के लिए गांव के निकट मकान बनाने की जमीन प्राप्त करे। इन लोगों को अपने परिवारों के लिए सादे मकान बनाने के लिए ऋण दिये जायंगे।

ढेबर-आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप, भारत-सरकार ने अब फैसला किया है कि विभिन्न राज्यों के अधिकांश आदिवासी-क्षेत्रों में

तीसरी योजना की अवधि में 'समन्वित विकास खंड' कायम कर दिये जायं। तकनीकी और सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में परिगणित और आदिम-जातियों के बच्चों को बड़ी संख्या में छात्रवृत्तियां दी जारही हैं। अनुमान है कि इन दुर्बल और पिछड़े वर्गों को इस समय करीब ६१,००० छात्र-वृत्तियां दी जा रही हैं।

शहरी क्षेत्रों में गंदी बस्तियों की सफाई और सुधार पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है, हालांकि इस कार्यक्रम के लिए वर्तमान प्रावधान काफी नहीं समझा जा सकता। तीसरी योजना में मेहतर-वर्ग की काम की परिस्थितियों में दृश्य सुधार लाने के लक्ष्य को उच्च प्राथ-मिकता दी गई है। इस वर्ग की भलाई की देखभाल करने के लिए सर-कार ने एक केंद्रीय समिति नियुक्त की है। यह वर्ग सामाजिक स्तंभ की निम्नतम चट्टान है।

जिस समाजवादी लोकतंत्र में अल्प सुविधाभोगी वर्गों को आर्थिक प्रगति का उचित भाग प्राप्त नहीं होता, वह न्यायोचित और समतामूलक होने का दावा नहीं कर सकता। अनेक वर्षों पहले गांधीजी ने हमें एक मंत्र दिया था, जो मेरी राय में सभी समाजवादियों का ध्रुवतारा होना चाहिए। वह इस प्रकार है : "जब कभी तुम्हें शंका हो अथवा तुम पर अहम हावी हो रहा है तो यह कसौटी लागू करो : सबसे गरीब और दुर्बल मनुष्य के मुख का स्मरण करो, जिसे तुमने कभी देखा हो और अपने से पूछो कि जो कदम तुम उठाने जा रहे हो, वह उसके लिए कुछ लाभदायक होगा अथवा नहीं।"

शहरी आय की सीमा

भारत में भूमि-सुधारों के सूत्रपात से, जिसमें भूस्वामित्व की अधिक-तम सीमा निर्धारित करने की योजना भी शामिल है, देहातों में पहले से अधिक आर्थिक समता आई है, हालांकि तत्संबंधी कानूनों के अमल में बहुत कुछ सुधार की गुंजाइश है। किंतु यह स्वीकार करना होगा कि शहरी क्षेत्र में लोगों की आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए अभी काफी कदम नहीं उठाये गए हैं। यह समझ में आता है कि

शहरों में आय, संपत्ति और जायदाद की सीमा भूमि के समान कठोरता और यांत्रिकता से निर्धारित नहीं की जा सकती। फिर भी शहरी भूमि और मकानों की जायदादों से होनेवाली अनार्जित आय का पर्याप्त भाग हस्तगत करने की काफी गुंजाइश है और इस प्रकार समाज के विनियोजन साधनों को बढ़ाया जा सकता है। यह सोचा गया है कि अगली दो या तीन योजनाओं की अवधि में शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में टैक्स काटने के बाद आय की सीमा औसत पारिवारिक आय की तुलना में तीस गुना से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि संभव हुआ तो अपने देश के अधिकतर लोगों की अल्प आय को देखते हुए इस आय की खाई को और भी पाटने का केंद्रित प्रयास किया जायगा।

शहरों में वर्तमान आर्थिक विषमताओं का मुख्य कारण यह है कि धनी-वर्ग टैक्सों से बचते हैं या उनकी चोरी करते हैं। हमारे कर-क़ानूनों के इन छिद्रों को अविलंब प्रभावशाली ढंग से बंद करना होगा। मकान-मालिक भी मनमाने ऊंचे किराये लेकर मध्यम और निम्न मध्यम वर्गों का अनुचित शोषण करते हैं। नये बने मकानों के मालिकों को प्रथम पांच वर्ष मनमाना किराया लेने की जो रियायत दी गई है, उसका अधिकतर शहरों में दुरुपयोग हुआ है और इस पर फिर से विचार करना होगा। पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत बड़े परिमाण में इमारतों और परियोजनाओं के निर्माण के फलस्वरूप भारत में एक नये संपन्न वर्ग का उदय हुआ है। इन ठेकेदारों की शोषक वृत्तियों पर अंकुश लगाना होगा, ताकि देश के भीतर आर्थिक विषमताओं को कम किया जा सके।

संतुलित क्षेत्रीय विकास

समाजवादी अर्थतंत्र को अपने समस्त नागरिकों को केवल समान अवसर देने की ही कोशिश नहीं करनी चाहिए, बल्किउनके समग्र विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों और राज्यों को आवश्यक सुविधाएं भी उपलब्ध करनी चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि तीसरी योजना का एक पूरा अध्याय

'संतुलित क्षेत्रीय विकास' के संबंध में है, ताकि देश अल्पविकसित क्षेत्रों में कृषि और सामाजिक सेवाओं के साथ-साथ उद्योगों के व्यापक विस्तार की ओर विशेष ध्यान दे सके। तीसरी योजना बनाते समय योजना आयोग ने केंद्रीय सहायता की मात्रा निर्धारित करने में पिछड़े क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखने की बड़ी सावधानी रखी है। उपलब्ध आंकड़ों से स्पष्ट पता चलता है कि जो राज्य आर्थिक-विकास के विभिन्न क्षेत्रों में अभी भी पिछड़े हुए हैं, उन्हें उन राज्यों के मुकाबले, जिनकी अर्थ-व्यवस्था उल्लेखनीय प्रगति कर चुकी है, केंद्रीय सहायता का अधिक प्रतिशत प्राप्त हुआ है।

विभिन्न क्षेत्रों में पहली, दूसरी और तीसरी योजनाओं के आधीन प्रति व्यक्ति राज्य की राशि, राज्य के साधन और केंद्रीय सहायता का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है :

क्षेत्र

	उत्तरी	मध्य	पूर्वी	पश्चिमी	दक्षिणी
राज्य की राशि					
पहली योजना	६७	२६	४२	४७	३५
दूसरी योजना	६६	३८	४६	६८	५७
तीसरी योजना	१२३	७५	७८	१०४	६२
राज्य के साधन					
पहली योजना	६	१२	१२	३०	१७
दूसरी योजना	२७	१६	२१	४५	२८
तीसरी योजना	४२	२३	२४	५७	३४
केंद्रीय सहायता					
पहली योजना	५८	१७	३०	१७	१८
दूसरी योजना	४२	२२	२५	२३	२६
तीसरी योजना	८०	५२	५४	४७	५८

नोट:—राज्य पुनर्गठन कानून १९५६ द्वारा निर्धारित क्षेत्रों के अनुसार राज्यों को पांच क्षेत्रों में विभक्त किया गया है; केवल दक्षिणी क्षेत्र में आंध्र, मद्रास, मैसूर और केरल ये चार राज्य और पश्चिमी क्षेत्र में महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्य रखे गए हैं।

योजना आयोग क्षेत्रों और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास को एक समग्र क्रिया का ही हिस्सा मानता है। तीसरी योजना कहती है : "राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की प्रगति विभिन्न क्षेत्रों के विकास की दर में प्रकट होगी और उसी अनुपात में क्षेत्रीय साधनों का अधिकाधिक विकास समग्र देश की प्रगति की रफ्तार को तेज करने में योग देगा।" इस बात का ध्यान रखना होगा कि विशिष्ट क्षेत्रों की जरूरतों का समग्र राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की जरूरतों के साथ मेल बिठाये बिना उनकी समस्याओं पर अत्यधिक जोर देना और उनके विकास की योजना बनाने की कोशिश करना उचित नहीं होगा; कारण, देश की मूलभूत ईकाइयों के रूप में ही विभिन्न क्षेत्र अपना पूरा संभावित विकास होने की आशा कर सकते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय और क्षेत्रीय विकास घनिष्ठ रूप से एक दूसरे के साथ जुड़े हैं और उन पर समग्र दृष्टि से ही विचार किया जाना चाहिए।

श्री वाल्टर इसार्ड कहते हैं, "जहां पर्याप्त क्षेत्रीय आर्थिक विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों का अभाव है, वहां राष्ट्रीय आर्थिक विकास के कार्यक्रमों की सफलता की संभावना कम हो जाती है और राष्ट्रीय विनियोजनों से समग्र लाभ घट जाता है। इस प्रकार राष्ट्र की हानि होती है और चूंकि हर क्षेत्र राष्ट्र का अंग होता है, अतः साधारण तौर पर क्षेत्र की भी हानि होती है।"

जो भी हो, भारत में समाजवादी आयोजन का उद्देश्य यह है कि उचित अवधि के भीतर देश के सभी राज्यों और क्षेत्रों को वह जीवन-मान उपलब्ध हो जाय जो सारे देश के जीवन-मान से अधिक भिन्न न हो। इसलिए तीसरी योजना में हर राज्य की जरूरतों और समस्याओं पर गहराई से विचार करने के बाद ही व्यय की धन-राशियां निर्धारित की गई हैं। ऐसा करने में पिछली प्रगति और विकास में रही कमियों, प्रमुख राष्ट्रीय लक्ष्यों की सिद्धि में संभावित योगदान, विकास-सामर्थ्य, और अपनी विकास योजना में राज्य के साधन-योग का भी लिहाज रखा गया है। योजना परिवहन और संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक सेवाओं के लिए देश के सभी भागों के लिए प्राव-

धान करती है ताकि वे सब यथासंभव समान स्तर पर आ सकें। गत दशाब्दि में विभिन्न राज्यों के विकास-स्तर का और तीसरी योजना के अंत में क्या विकास-स्तर रहेगा, इसका विवरण परिशिष्ट (५) में दिया गया है।

उद्योगों का स्थान

जहां तक बड़े और भारी उद्योगों का संबंध हैं, आर्थिक और तकनीकी दृष्टि हमेशा महत्वपूर्ण रहती है और व्यवहार में छुट-पुट अंतर ही संभव हो सकता है। इसलिए राजकीय क्षेत्र परियोजनाओं के स्थानों का चुनाव करने में आवश्यक तकनीकी और आर्थिक कसौटियों को न छोड़ते हुए जहां कहीं संभव हुआ है, अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों के दावों को ध्यान में रखा गया है। इस्पात जैसी महत्वपूर्ण परियोजनाओं के स्थानों का चुनाव विशेषज्ञों के अध्ययन और आर्थिक संभावनाओं के आधार पर किया गया है। किंतु उनकी स्थापना औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में हुई है, इसलिए उन्हें अवश्य लाभ पहुंचेगा। केंद्रीय परियोजनाओं की संपूर्ण सूची उनके स्थानों के साथ परिशिष्ट (६) में दी गई है।

बुनियादी और महत्व के उद्योगों के लिए स्थान चुनने में कच्चे माल की निकट से उपलब्धि और अन्य आर्थिक कारणों को स्वभावतः ध्यान में रखा गया है, किंतु विविध प्रकार के उपभोक्ता-सामग्री-उद्योगों और रूपांतरीय उद्योगों के मामले में क्षेत्रीय विकास को प्रोत्साहन दिया गया है। निजी क्षेत्र में औद्योगिक परियोजनाओं के स्थानों के बारे में भी अल्पविकसित क्षेत्रों के दावों को उचित महत्व दिया गया है। जो क्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, उन्हें बिजली, पानी परिवहन जैसी सुविधाएं देने का प्रयास किया जा रहा है। तीसरी योजना में उन पिछड़े क्षेत्रों में 'औद्योगिक विकास क्षेत्र' कायम करने का प्रस्ताव है, जिनमें बुनियादी सुविधाएं दी जा सकती हों और कारखानों के स्थान विकसित करके लघु और मध्यम व्यवसायियों को बेचे या लम्बे पट्टे पर दिये जा सकें। पंचवर्षीय योजना हर बड़ी परियोजना को, चाहे वह उद्योग,

सिंचाई अथवा विद्युत संबंधी हो, सघन और समन्वित क्षेत्रीय विकास का केंद्र बिंदु मानती है।

पंचायती-राज

भारत सरकार और राज्य सरकारों ने विविध प्रकार की प्रगति तथा विकास के लिए भारतीय जनता को और भी अवसर देने की दृष्टि से एक उल्लेखनीय क़दम उठाया है। लोकतंत्री विकेंद्रीयकरण अथवा पंचायती राज की स्थापना ही वह क़दम है। यह प्रयोग एक अत्यंत क्रांतिकारी क़दम है, जो नींव के स्तर पर व्यापक समाजवाद की स्थापना की दृष्टि से उठाया गया है।

किंतु यह याद रखना होगा कि इस प्रयोग की सफलता प्रोफ़ेसर शुम्पीटर के शब्दों में 'लोकतंत्री स्व-अनुशासन' पर मुख्यत: निर्भर करेगी। इसमें बुनियादी रूप से सहिष्णुता और अधिकारों के साथ कर्त्तव्यों पर आग्रह शामिल है। युगोस्लाविया के प्रेसिडेंट टीटो ने 'श्रमिक कौंसिलों' को सत्ता सौंपने की साहसिक योजनाओं का श्रीगणेश किया है। किंतु लंदन के 'इकोनोमिस्ट' पत्र के अनुसार हाल की घटनाओं ने सिद्ध किया कि अनेक फ़ैक्ट्री प्रबंधकों और स्थानीय अधिकारियों ने उस उच्च भावना से प्रेरित होकर काम नहीं किया, जिसकी उनसे आशा की जाती थी। आखिरी बात यह है कि समाजवादी लोकतंत्र तभी सफलतापूर्वक चल सकेगा, जब बहुसंख्यक नागरिकों में गुणों की दृष्टि से ठोस सुधार हो।

आचार्य विनोबा ने पंचायती-राज की स्थापना को सही दिशा में उठाया गया क़दम माना है, किंतु उन्होंने एक चेतावनी भी दी है। उनकी यह निश्चित राय है कि ग्राम समाजों को व्यापक आर्थिक और राजनीतिक अधिकार देने के पूर्व भारतीय गांवों में पहले से अधिक सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित होनी चाहिए। सघन खेती के साथ भूमि का अधिक न्यायोचित वितरण और ग्राम-उद्योगों का विकास करके यह लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। आर्थिक शक्ति के समुचित वितरण के बिना राजनीतिक शक्ति के विकेंद्रीयकरण से 'विकेंद्रित शोषण' की परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। अब तक के

अनुमान से भी पता चला है कि अनेक स्थानों में पंचायतों पर धनी किसानों अथवा कतिपय समाज विरोधी तत्त्वों या गांव के 'गुंडों' ने कब्जा कर लिया है । समय के दौरान, लोगों में यह शक्ति पैदा हो जायगी कि पंचायतों से निहित स्वार्थों को निकाल बाहर फेंकेंगे और ज्यादा अच्छे सेवा-भावी व्यक्ति इन संस्थाओं को चलाने के लिए आगे आ सकेंगे । फिर भी कृषि और उद्योग के दोनों क्षेत्रों में आर्थिक शक्ति के वितरण से हमारे गांवों में ठोस आधार पर लोकतंत्री समाजवाद की स्थापना करने में बड़ी मदद मिलेगी ।

'पंच परमेश्वर'

यह वांछनीय है कि ग्राम-पंचायतों का संचालन सर्व सम्मति से या करीब-करीब सर्व सम्मति से हो, ताकि ग्राम-समाज की आम सहमति और सद्भावना से विविध काम किये जा सकें । बहुमत का शासन लोकतंत्र का मुख्य सिद्धांत है, किंतु यह लोकतंत्र धीरे-धीरे 'भीड़तंत्र' में बदल जाता है और अपनी मौलिक विशेषता खो देता है । आखिर, श्री एस० आई० बेन के शब्दों में बहुमत का सिद्धांत केवल संख्या की शक्ति का राज बन जाता है और १०० में से ५१ के बाद शेष ४९ के लिए कोई मौलिक नैतिक सत्ता नहीं बच रहती । इसलिए यह सुझाया गया है कि भारत की विभिन्न राजनीतिक पार्टियां आपस में यह 'सज्जनोचित समझौता' करें कि वे पंचायती-राज की विभिन्न संस्थाओं के चुनावों में अपने अधिकृत उम्मीदवार खड़े नहीं करेंगी । इन राजनीतिक पार्टियों के प्रत्यक्ष हस्त-क्षेप से निश्चय ही इन स्थानीय संस्थाओं के दैनिक काम-काज में कटुता उत्पन्न होगी जब कि पुरानी परंपरा के अनुसार वे 'पंच परमेश्वर' की भावना से काम करती हैं । इन पंचायतों के निर्णयों की पवित्रता सर्व-सम्मति और सद्भावना में निहित है ।

देश में राज्य और केंद्रीय स्तरों पर संसदीय प्रणाली ब्रिटेन से स्वीकार की गई है और पिछले पंद्रह वर्षों में वह संतोषजनक ढंग से चली है, किंतु यह स्वीकार किया जाता है कि यदि लोकतंत्र का उसी नमूने पर निचले स्तरों में भी अमल किया गया तो ग्राम-जीवन के अस्त-

व्यस्त होने का खतरा है और उसके फलस्वरूप आर्थिक और सामाजिक विकास की प्रगति मंद हो जायगी। यदि पंचायतें सत्ताधारी पक्ष और विरोधीपक्ष की भाषा में सोचने लगेंगी और प्रश्न-काल, स्थगन प्रस्ताव और बहिर्गमन जैसी बातें उनमें दाखिल हुईं तो पंचायती-राज की स्थापना वरदान सिद्ध होने के बजाय वस्तुत: एक अभिशाप सिद्ध हो सकती है। यह ऐसी दुखद घटना होगी, जिसका शब्दोंमें वर्णन नहीं किया जा सकता। आशा है कि देश की राजनीतिक पार्टियां इन ग्राम-संस्थाओं के साथ बड़ी सावधानी और कोमल भावना से पेश आयंगी और सादियों पुरानी परंपरा के अनुसार लोकतंत्री विधियां विकसित करने में संयुक्त रूप से मदद देंगी।

अंतिम निष्कर्ष यह है कि इन ग्राम-संस्थाओं की स्थायी सफलता इस पर निर्भर करेगी कि वे ग्रामीण आबादी के दारिद्रतम वर्गों के जीवन-मान को ऊंचा उठाने में कहां तक सफल होती हैं। उनमें भूमिहीन श्रमिकों, परिगणित जातियों और आदिम जातियों का समावेश होता है। गांवों के अपेक्षाकृत धनी व्यक्तियों को अपना यह पवित्र कर्तव्य समझना होगा कि उन्हें अपने कमजोर भाइयों को मदद देनी है, जिससे वे पंचायतों और सहकारी समितियों में भाग लेकर अपने को गरीबी के दलदल से निकाल बाहर कर सकें। जबतक जनता और प्रशासन दोनों पंचायती-राज के इस पहलू पर उचित ध्यान नहीं देंगे, तबतक इन ग्राम-संस्थाओं के महत्वपूर्ण योग के बारे में जो आशाएं की जा रही हैं, वे केवल शुभाशाएं मात्र ही रहेंगी।

६

सामाजिक और राष्ट्रीय एकता

यह प्रकट है कि समाजवादी समाज में समाज के सभी वर्गों के अंदर राष्ट्रीय-एकता और समानहित एवं साझेदारी का सुदृढ़ आधार होना चाहिए। इसलिए भारत में समाजवादी इमारत खड़ी करने के लिए सामाजिक अथवा राष्ट्रीय एकता की नींव जरूरी है। यह स्पष्ट समझना होगा कि राष्ट्रीय एकता का आदर्श केवल भावात्मक प्रेरणा नहीं है। एकता की भावना आर्थिक दृष्टि से भी जरूरी है। यह जानना दिलचस्प होगा कि अमरीकी राष्ट्रपति को आर्थिक मामलों में सलाह देनेवाली परिषद् ने जातीय भेद के बारे में अपनी हाल की रिपोर्ट में कहा है कि यह 'राष्ट्रीय कलंक' है, जिससे "राष्ट्र को आर्थिक हानि पहुंचती है।" रिपोर्ट में आगे कहा गया है, "यह रंग-भेद मानव-साधनों के विकास और उपभोग में बाधक होता है, कार्य-क्षमता घटाता है, अर्थ-व्यवस्था के विकास को धीमा करता है, और आर्थिक प्रगति के नतीजों के वितरण को बदल देता है।" श्री रेमंड फ्रोस्ट कहते हैं, "राष्ट्र के भीतर एकता का अभाव केवल राजनीतिक परेशानी ही पैदा नहीं करता, बल्कि आर्थिक हानि का कारण भी होता है। जहां एकता नहीं होती, सरकार को उसे थोपना और उसका पालन कराना पड़ता है और एकता को थोपने का खर्च राष्ट्र के आर्थिक साधनों को क्षीण कर सकता है।"

श्री लुई फिशर का यह उल्लेखनीय कथन है कि एशिया और अफ्रीका के नवोदित स्वतंत्र देशों में राष्ट्रवाद तो है, किंतु राष्ट्रों का पता नहीं है। भारत में सभी राष्ट्रीय नेता सामाजिक एकता पर सबसे अधिक जोर देते हैं। हम इस नग्न तथ्य के प्रति आंख नहीं मूंद सकते कि धार्मिक असहिष्णुता, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद और भाषावाद जैसी विघटनकारी शक्तियां हमारे देश में सक्रिय रही हैं। दुर्भाग्यवश, हर

आम चुनाव के समय इन राष्ट्रीयता विरोधी शक्तियों की ज्वाला पहले से अधिक भड़कती दिखाई देती है। निस्संदेह, दूसरी बहुत-सी शक्तियां भी काम कर रही हैं, जैसे कि शहरों और उद्योगों का विस्तार हो रहा है और उनके कारण, श्री ताया जिन्किन के शब्दों में, "जाति-प्रथा का अंत हो रहा है।" फिर भी हमें साफ-साफ स्वीकार करना होगा कि अनेक विघटनमूलक प्रवृत्तियां हमारे त्वरित आर्थिक विकास के अभियान में भारी बाधा डाल रही हैं।

केवल एक नागरिकता

चीनी और पाकिस्तानी आक्रमणों के कारण जो नई स्थिति उत्पन्न हुई है, वह वास्तव में देश में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक एकता स्थापित करने में बहुत अधिक सहायक हुई है। यह एकदम नया अनुभव है। इस अर्थ में, यह संकटकाल छिपा वरदान सिद्ध हुआ है। किंतु हमको इस बारे में तनिक भी उदासीन नहीं होना चाहिए। यदि विभिन्न विघटनकारी शक्तियों का संघठित रूप से मुकाबला करने की पर्याप्त सावधानी नहीं रखी गई तो समाज-विरोधी प्रवृत्तियां अपना कुरूप चेहरा बाहर निकाल सकती हैं और बिना किसी चेतावनी के उभर सकती हैं। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने अपने स्वतंत्रता-दिवस के एक संदेश में अपील की है कि हमें एकता, स्वतंत्रता, न्याय और सहयोग के सिद्धांतों पर एक संयुक्त, सोद्देश्य समाज-व्यवस्था का विकास करना चाहिए। इसलिए, भारत को स्थायी आधारों पर ऐसा समाज स्थापित करने की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए। यह तभी हो सकेगा, जब हर भारतीय नागरिक की मातृभूमि के प्रति सर्वोपरि निष्ठा होगी, और अपनी जाति, समुदाय, भाषा और राज्य को वह उसके बाद स्थान देगा।

यह सौभाग्य की बात है कि हमारा संविधान देश के सब लोगों के लिए एक ही नागरिकता स्वीकार करता है और सारे देश में उन्हें समान अधिकार और अवसर देता है। इसलिए जाति, भाषा और क्षेत्रीय विचारों को दूसरा स्थान देना होगा। हमें नेहरूजी के इन सार्थक शब्दों को हमेशा याद रखना चाहिए, "मैं चाहता हूं कि धर्म अथवा

जाति, भाषा अथवा प्रांत के नाम पर होनेवाले वर्तमान संकुचित संघर्ष समाप्त हो जायं और एक वर्गहीन और जाति-विहीन समाज की स्थापना हो, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार विकास करने का पूरा अवसर मिले। खासतौर पर, मैं आशा करता हूं कि जात-पांत का अभिशाप मिटा दिया जायगा, क्योंकि जात-पांत के आधार पर न लोकतंत्र और न समाजवाद ही संभव हो सकता है।"

त्रिभाषी-सूत्र

यह सही है कि राष्ट्रीय एकता अपीलों और मीठे नारों से स्थापित नहीं हो सकती। राष्ट्रीय-एकता-परिषद् ने सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीयतावाद, और अन्य विघटनकारी शक्तियों के बारे में अनेक कमेटियां नियुक्त की हैं और उनसे समस्याओं की जड़ में जाने और व्यावहारिक हल प्रस्तुत करने का अनुरोध किया है। उदाहरण के लिए, शिक्षा मंत्रालय ने जो 'त्रिभाषी-सूत्र' तजवीज किया है, वह सांस्कृतिक और सामाजिक समन्वय की दिशा में सही कदम है। अपनी मातृभाषा जानने के अलावा माध्यमिक स्तर पर हर विद्यार्थी को अंग्रेजी और भारतीय संघ की राज-भाषा—हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। जिन विद्यार्थियों की मातृ-भाषा हिंदी हो, अगर वे एक और आधुनिक भारतीय भाषा, विशेषकर दक्षिण की भाषा का ज्ञान प्राप्त करेंगे तो उससे राष्ट्रीय एकता का वातावरण पैदा करने में मदद मिलेगी। किंतु यह ध्यान में रखना होगा कि केवल अनेक भाषाओं के ज्ञान से ही अंततः सांस्कृतिक एकता स्थापित नहीं हो सकती। अंतिम निष्कर्ष यह है कि आनेवाली पीढ़ियों की उदारता और दूरदर्शिता से ही राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त होगा। संकुचितता के वातावरण में अगर पाठ्यक्रमों में अनेक भाषाएं सिखाने की व्यवस्था की गई तो एकता और मजबूती का स्वस्थ वातावरण पैदा होने के बजाय भाषायी कटुता और प्रतियोगिताएं बढ़ सकती हैं।

अंग्रेजी का स्थान

हिंदी के साथ-साथ सन् १९६५ के बाद भी अंग्रेजी को भारतीय

भारतीय संघ की सहायक राज-भाषा बनाने के फैसले ने देश में अनेक प्रति-क्रियाओं को जन्म दिया है। इस नाजुक प्रश्न पर सहिष्णुता और दूर-दर्शिता से विचार करना होगा ताकि भाषा का सवाल राष्ट्रीय सद्-भावना की सर्वोपरि आवश्यकता पर हावी न हो जाय। अगले पांच या दस वर्षों में केंद्र और राज्यों में हिंदी का ज्ञान व्यवस्थित रूप से फैलाने की काफी कोशिश करनी होगी। अन्यथा, अंग्रेजी भाषा सहकारी राज-भाषा रहने के बजाय हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की कीमत पर अपने को स्थायी बनाने की कोशिश कर सकती है। यह सुझाया गया है कि संसद अंग्रेजी के दूसरी भाषा के रूप में व्यवहार की एक अवधि नियत करदे। एक निश्चित अवधि तय करने में कुछ लाभ हो सकता है, किंतु मेरे विचार से यह मामला अहिंदी भाषा क्षेत्रों की सद्भावना पर छोड़ना ज्यादा अच्छा होगा। वह समय आ गया है जब हिंदी को भार-तीय संघ की एकमात्र राजभाषा बनाने की जिम्मेदारी अहिंदी भाषी लोगों पर विश्वास की भावना के साथ छोड़ देनी चाहिए। जबतक हिंदी भाषी लोग हिंदी को राजभाषा बनाने का आंदोलन करते रहेंगे, तबतक हिंदी को भारतीय राष्ट्रवाद का मूलभूत अंग स्वीकार कराने का स्वस्थ वातावरण बनाना कठिन होगा।

अखिल भारतीय सेवाएं

राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के कार्य में अखिल भारतीय सेवाओं का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है, इस पर व्यवस्थित तरीके से विचार होना चाहिए। राज्य-पुनर्गठन-आयोग ने अपनी रिपोर्ट में प्रशासन को अच्छा बनाने और अंतःराज्यीय एकता का विकास करने के लिए अनेक अखिल भारतीय सेवाओं को संगठित करने का सुझाव दिया है। यह संतोष का विषय है कि इस प्रस्ताव का राज्य-सरकारों ने अनुकूल उत्तर दिया है और इंजीनियरी, चिकित्सा और वनों के लिए अखिल भारतीय सेवाएं संगठित करने की दिशा में कदम उठाये गए हैं। शायद यह वांछनीय होगा कि शिक्षा और कृषि के बारे में दो और अखिल भारतीय सेवाओं का श्रीगणेश किया जाय। यह सुझाया गया

है कि वर्तमान अखिल भारतीय सेवाओं में करीब ५० प्रतिशत नये अधिकारी संबंधित राज्यों से बाहर के होने चाहिए। मेरी राय में, यह बहुत स्वस्थ परंपरा होगी।

शिक्षा का माध्यम

विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा का माध्यम क्या हो, इस बारे में हाल के वर्षों में काफी विवाद रहा है। एक ओर अनेक शिक्षा-शास्त्रियों की यह दृढ़ राय है कि हमारे कालेजों और विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय, तो दूसरी ओर बहुत से ऐसे लोग हैं जो उच्च शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने की उतने ही जोर से हिमायत करते हैं। उपकुलपतियों और राज्यों के मंत्रियों की अनेक कांफ्रेंसों में इस प्रश्न पर बार-बार और विस्तार से विचार हुआ है, और निष्कर्ष यह है कि विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए, किंतु साथ ही अंग्रेजी और हिंदी दोनों भाषाओं का खासा अच्छा ज्ञान कराना चाहिए। किंतु तकनीकी पाठ्यक्रमों में, विशेषकर चिकित्सा और इंजीनियरी में, आनेवाले अनेक वर्षों तक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनी रहनी चाहिए, जबतक कि हिंदी अथवा क्षेत्रीय भाषाएं इस काम के लिए काफी विकसित न हो जांय। अनेक राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों ने यह तीव्र इच्छा प्रकट की है कि केंद्रीय सरकार राष्ट्रीय विश्वविद्यालय कायम करे; संभव हो तो हर राज्य में एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय हो। इन विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिंदी हो। यह एक ऐसा सुझाव है, जिस पर राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से सावधानी पूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

अल्पसंख्यकों की समस्याएं

भाषायी अल्पसंख्यकों संबंधी समस्याओं पर भी सहानुभूति के साथ विचार करना चाहिए। अल्पसंख्यकों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर जरूरत से ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं; क्योंकि इससे समान राष्ट्रीयता के विकास में बाधा पड़ती है। किंतु

अल्पसंख्यकों में यह विश्वास की भावना पैदा करने की सच्ची कोशिश होनी चाहिए कि उनके उचित हितों को पर्याप्त संरक्षण मिल रहा है। उदाहरण के लिए, राज्य-सरकारों को भाषायी अल्पसंख्यकों के बालकों को प्राथमिक स्तर पर उनकी मातृभाषा में शिक्षा देने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। इस विषय में उर्दू के प्रश्न पर विशेष सहानुभूति से विचार करना चाहिए। इसके अलावा, राज्यों की नौकरियों में भरती की प्रणाली किसी भी रूप में अल्पसंख्यकों के न्यायोचित प्रतियोगिता में शामिल होने के रास्ते में बाधक नहीं होनी चाहिए। क्षेत्र-विशेष में आवास के नियम अक्सर इस तरह बनाये गए हैं कि अल्पसंख्यक समूहों को नौकरियों में स्थान नहीं मिल पाता। यह निश्चय ही युक्ति-युक्त नहीं है और आशा है, राज्य-सरकारें अविलंब इन नियमों में संशोधन करेंगी।

वर्तमान में हर राज्य के लिए एक राज्य-सेवा-आयोग है। शायद यह ज्यादा अच्छा होगा कि एक से अधिक राज्यों के लिए एक ही राज्य सेवा-आयोग हो, ताकि राज्यों की नौकरियों के लिए उम्मीदवारों के चुनाव में संकुचित और क्षेत्रीय विचार हावी न हों।

राज्य-पुनर्गठन-आयोग ने सुझाया है कि वही राज्य एक-भाषी गिना जाय, जिसमें एक भाषी समुदाय का अनुपात कुल जनसंख्या के करीब ७० प्रतिशत से अधिक हो। जहां अल्पसंख्यक समुदाय जनसंख्या के ३० प्रतिशत से अधिक बड़ा हो, उस राज्य को प्रशासनिक कामों के लिए द्विभाषी माना जाय। इस प्रकार की व्यवस्था क्षेत्र के अल्पसंख्यक समुदायों में विश्वास की भावना पैदा करने में सहायक होगी।

सबसे बड़ा कलंक

हमारा संविधान अस्पृश्यता की प्रथा को कानूनी अपराध मानता है। गृह-मंत्रालय हाल के वर्षों में देश के विभिन्न भागों में अस्पपृश्यता की प्रथा को खत्म करने की कोशिश कर रहा है। परिगणित जाति और परिगणित आदिम जाति आयुक्त की वार्षिक रिपोर्टों में बराबर इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया है कि यह सामाजिक बुराई अनेक

क्षेत्रों में, विशेषकर देहातों में, आज भी बनी हुई है। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित राजनीतिक लड़ाइयों में व्यस्त रहते हुए भी हिंदू समाज पर लगे इस 'सबसे बड़े कलंक' को मिटाने के लिए अनेक बार अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। किंतु हमें वास्तविक स्थिति का मुकाबला करना होगा और राज्य सरकारों की मदद से इस सामाजिक बुराई के अमानवी पहलू के बारे में लोगों को शिक्षित करने का संगठित प्रयास करना होगा और जो लोग संविधान के निर्देश का पालन करने से इन्कार करें, उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करनी होगी। गृह-मंत्रालय ने हाल में अनुसूचित जातियों के आधार पर नहीं, बल्कि आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर शैक्षणिक छात्रवृत्तियां देने का सही निर्णय किया है। राज्य सरकारों से भी भविष्य में इसी सिद्धांत पर चलने का अनुरोध किया गया है। जाति-प्रथा और अस्पृश्यता को बिना किसी दण्ड-भय के सहन करनेवाला समाजवादी समाज निश्चय ही समाजवाद का मजाक होगा।

नेहरूजी ने अपनी आत्मकथा में कहा है कि हमें भारत में साम्यवाद और सम्प्रदायवाद दोनों से निपटना होगा। यद्यपि साम्यवादी दर्शन के उद्देश्य सराहनीय हैं, किंतु इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जो साधन अपनाये जाते हैं, वे हिंसा और वर्ग-संघर्ष पर आधारित हैं। सम्प्रदाय-वाद में तो सभ्य-समाज के लिए कुछ भी अपनाने योग्य नहीं है, वह तो आदि से अंत तक कुरूप है। जाति-प्रथा, जैसा गांधीजी ने कहा है, प्राचीन भारत में आर्थिक और सामाजिक दृष्टियों से कुछ लाभदायक रही होगी। उन्होंने लिखा है, "वह गरीबी की रामबाण दवा थी और व्यावसायिक संघों के सब लाभ उसमें मौजूद थे।" किंतु यह सामाजिक-प्रथा गत कुछ शताब्दियों में इस देश में जिस तरह विकसित हुई, उसने अस्पृश्यता की निर्दय-प्रथा को जन्म दिया है। अमरीका समेत पश्चिम के अनेक देशों में रंग-भेद और जाति-भेद का अस्तित्व सचमुच अत्यंत शोचनीय है। किंतु हमारे समाज में अस्पृश्यता की प्रथा वास्तव में हमारी सदियों पुरानी संस्कृति और सभ्यता पर सबसे बड़ा कलंक रही है। उसका अपना युग था, किंतु उसे अब मिटना चाहिए। नेहरूजी

ने कहा है, "अस्पृश्यता के अवशेष और सामाजिक एवं धार्मिक श्रेष्ठता पर आधारित घृणा देश को कमजोर बनाते हैं और प्रगति की दिशा में उसके प्रवाह में बाधक होते हैं।"

स्त्रियों का दर्जा

भारतीय संविधान में, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर दर्जा दिया गया है। बुनियादी अधिकारों के अंतर्गत यह स्पष्ट निर्दिष्ट किया गया है कि पुरुषों और स्त्रियों को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन पाने का अधिकार है। वास्तव में, गांधीजी ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले ही भारत में स्त्रियों को सार्वजनिक मामलों में सम्मान-जनक स्थान देने को बहुत अधिक महत्व दिया था। उनकी प्रेरणा से ही स्त्रियों ने स्वतंत्रता के राष्ट्रीय संग्राम में प्रमुख भाग लिया था। गांधीजी ने कहा था, "मेरी यह दृढ़ राय है कि भारत की स्वतंत्रता स्त्रियों के त्याग और ज्ञान पर निर्भर करती है।"

नेहरूजी भी भारतीय लोकतंत्र में स्त्रियों के उचित अधिकारों के कट्टर हिमायती रहे। भारतीय संसद में हिंदू विवाह विधेयक पर बोलते हुए उन्होंने कहा था, "अगर आप मानवता के एक बड़े अंग को, जन-संख्या के ५० प्रतिशत को, काटकरअलग कर देते हैं और उनकी सामाजिक सुविधाओं आदि की दृष्टि से अलग ही श्रेणी बना देते हैं तो आप लोकतंत्र कायम नहीं कर सकते।" भारतीय संसद ने हिंदू उत्तराधिकार प्रणाली के अंतर्गत लड़कों के समान ही लड़कियों के कानूनी अधिकार सुरक्षित करने के लिए आवश्यक कानून मंजूर किया है। हिंदू कोड कानून समाजवाद की व्यापक नीति का मूलभूत अंग है और निश्चय ही यह संतोष का विषय है कि भारत में स्त्रियां सरकार में और सार्वजनिक जीवन में उच्च-पद ग्रहण किये हुए हैं। वस्तुतः, यह उल्लेखनीय है कि हमारी संसद में दुनिया की अन्य संसदों के मुकाबले स्त्रियों का अनुपात अधिक है।

यह कहना सही नहीं है कि भारत में स्त्रियों के प्रति जो सम्मान दिखाया जाता है, उसको पैदा हुए थोड़ा ही समय हुआ है। असल में, इस देश में स्त्रियों को अत्यंत प्राचीनकाल से बहुत उच्च स्थान दिया

गया है। महान स्मृतिकार मनु ने दो हजार वर्ष पहले लिखा है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'—जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवताओं का निवास है। गत कुछ शताब्दियों से देश के अनेक भागों में स्त्रियां पर्दा, दहेज, बालविवाह और विषम उत्तराधिकार अधिकारों जैसी अवांछनीय सामाजिक कुरीतियों की शिकार रही हैं। किंतु भारत की स्त्री-जाति समाजवादी लोकतंत्र के आधीन अपना स्थान ग्रहण कर रही है और पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्रियों को शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में शिक्षा और अन्य सामाजिक सुविधाएं देने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। केंद्रीय समाज-कल्याण-बोर्ड ने पिछली दशाब्दि में महिला संगठनों की प्रगति के लिए सराहनीय काम किया है और यह निश्चित है कि ये कार्यक्रम आगामी योजनाओं में और भी तेज किये जायंगे।

बाल-कल्याण

नेहरूजी बच्चों को बहुत प्यार करते थे और यह उचित ही है कि उनका जन्मदिन सारे देश में बाल-दिवस के रूप में मनाया जाता है। उन्होंने बहुत बार कहा था कि राष्ट्र का भविष्य ज्योतिषियों की जन्म-कुंडलियों से नहीं, बल्कि बच्चों की आंखों की चमक में पढ़ना चाहिए। नेहरूजी ने कहा था, "मुझे ऐसे बच्चे देखकर बेहद तकलीफ होती है, जो शिक्षा से वंचित हैं और खाना तथा कपड़ा भी जिन्हें नसीब नहीं है।" उनका एक और कथन है, "यदि हमारे बच्चों को आज शिक्षा न मिले तो हमारे कल के भारत की कैसी तस्वीर होगी ?"

तीसरी योजना में, ६ से ११ वर्ष की आयु के तमाम बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और निश्शुल्क करदी गई है। चौथी योजना की अवधि में यही सुविधाएं ११ से १४ वर्ष की आयुवाले बच्चों को देने की हर संभव कोशिश की जायगी। सन् १९६६ तक करीब ५ करोड़ बच्चों के नाम देश के प्राथमिक स्कूलों में दर्ज किये जा चुके होंगे और इन स्कूलों की संख्या ४,००,००० जितनी होगी। बालवाड़ी शिक्षकों को पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जा रही है। बाल-हित की दृष्टि से विभिन्न कल्याण कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं और

तीसरी योजना की अवधि में करीब दो करोड़ रुपये बच्चों की विशिष्ट कल्याण योजनाओं पर खर्च किये जायंगे। इस प्रकार भारतीय लोकतंत्र की सामाजिक नीतियों में बालक और उसके कल्याण को उल्लेखनीय स्थान मिला हुआ है।

धर्मों के प्रति समान आदर

भारत अनेक धर्मों का देश है और सदियों के दौरान उसकी शक्ति का रहस्य 'विविधता में एकता' का सिद्धांत रहा है। यद्यपि अन्य देशों की भांति भारत में धर्म की छाया में अनेक पापों को आश्रय मिला है, किंतु यह स्वीकार करना होगा कि धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति की एक प्रधान विशेषता रही है। समाजवादी समाज में धार्मिक श्रद्धा और उपासना के क्षेत्र में इस सहिष्णुता की भावना का बहुत बड़ा महत्व है। गांधीजी ने अपनी सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में 'सर्वधर्म समभाव' अर्थात् सब धर्मों के प्रति समान आदर के आदर्श पर हमेशा जोर दिया। इस धार्मिक सहिष्णुता और उदारता को भारतीय समाजवाद का मूलभूत अंग समझा जाना चाहिए।

धर्म-निरपेक्षता की कल्पना

राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारत की धर्म-निरपेक्ष-राज्य की कल्पना को अक्सर गलत समझा गया है। आमतौर पर यह माना जाता है कि धर्म-निरपेक्षता का मतलब अधार्मिकता है और ख्याल किया जाता है कि धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है। यह अत्यंत भ्रामक खयाल है और असंख्य उलझनों का जनक है। पश्चिम में, पुरोहिती राज्य की बुराइयों के विरुद्ध प्रतिक्रिया धर्म-निरपेक्षता के रूप में प्रकट हुई। किंतु हमारे लिए धर्म-निरपेक्ष-राज्य का मतलब ऐसा राज्य है जहां सब धर्मों पर चलने की पूरी स्वतंत्रता है और जहां सरकार अन्य सब धर्मों के मुकाबले किसी एक धर्म को संरक्षण नहीं देती। डा० राधाकृष्णन् ने हाल में कहा है, "धर्म-निरपेक्षता का मतलब धर्म की उपेक्षा नहीं है, उसका मतलब है सब धर्मों के प्रति आदर।"

गांधीजी ने लिखा है, "भारत में, जिसके निर्माण में मैंने अपना सारा जीवन खपाया है, हर आदमी को समान दर्जा प्राप्त है, चाहे उसका धर्म कोई भी क्यों न हो।" उन्होंने और कहा है, "राज्य को पूर्णतया धर्म-निरपेक्ष होना होगा। मैं यहां तक कहूंगा कि उसमें किसी जातीय संस्था को राज्य का संरक्षण नहीं मिलना चाहिए। मैं यह चाहता हूं कि भारत हर व्यक्ति को अपने-अपने धर्म पर चलने की स्वतंत्रता दे।"

भाषायी राज्य

कुछ जिम्मेदार लोक-नेताओं ने कहा है कि क्षेत्रीय भाषाओं के आधार पर भारत का विभाजन एक बुनियादी गलती थी और उसे बहु-भाषी राज्य बनाकर सुधार लेना चाहिए। इस दलील के पीछे खयाल यह है कि भाषा के आधार पर राज्य का निर्माण विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देगा और भारत की बुनियादी एकता को कमजोर करेगा। मेरे विचार से इस विचार के मूल में गहरी भ्रांति है। भाषायी राज्यों का गठन, शिक्षा और शासन के क्षेत्रों में अंग्रेजी के बजाय क्षेत्रीय भाषाओं को स्थान देने के व्यावहारिक विचारों से प्रेरित होकर किया गया। बहुभाषी राज्यों में, शिक्षा के माध्यम और प्रशासन, दोनों क्षेत्रों में, अंग्रेजी के उपयोग को जारी रखने की निश्चित मनोवृत्ति थी। इस-लिए मैं भारत में भाषायी राज्यों के गठन में कोई बुनियादी गलती नहीं देखता। यदि हम लोकतंत्र को व्यापक बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि आम जनता आर्थिक और राजनीतिक हलचलों में भाग ले तो यह जरूरी है कि हमारे करोड़ों लोगों को प्रशासन के कामों में सक्रिय भाग लेना चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जब प्रशासन स्थानीय भाषाओं में चले। माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तरों पर हिंदी और अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य बनाकर क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग से उत्पन्न होनेवाले विघटन-कारी प्रभावों के संभावित खतरे का प्रतिकार किया जा सकता है। हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि भारत की बुनियादी एकता सांस्कृतिक समन्वय पर निर्भर करती है और उसे हमारे महान ऋषियों ने युग-युगों से पाला-पोसा है।

राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट ने 'भारत की एकता' वाले अध्याय में राष्ट्रीय-एकता को बढ़ावा देने के लिए अनेक व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। शिक्षा-मंत्रालय द्वारा नियुक्त संपूर्णानंद राष्ट्रीय-एकता समिति ने भारत की एकता की रक्षा करने और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक बहुमूल्य सिफारिशें की हैं। देश में लोकतंत्री और समाजवादी व्यवस्था की ठोस नींव डालने के लिए इन सिफारिशों पर सच्चे दिल से अमल करना जरूरी है।

क्षेत्रीय परिषदों का उपयोग अभीतक मुख्यतः पुलिस और कानून एवं व्यवस्था से संबंधित समस्याओं पर विचार करने के लिए ही किया गया है। यह देखकर संतोष होता है कि हाल में भाषा, शिक्षा और सिंचाई साधनों से संबंधित अनेक प्रश्नों को क्षेत्रीय परिषदों ने सफलता के साथ निपटाया है। इस क्रिया को और आगे बढ़ाना वांछनीय होगा। क्षेत्रीय परिषदों को विविध अंतर्राज्यीय समस्याओं को समझौते की भावना से हल करने का प्रभावशाली माध्यम बनाना चाहिए। देश में आठ नदी बोर्डों का गठन भी पड़ोसी क्षेत्रों में पानी के बटवारे की समस्या को हल करने का सुव्यवस्थित माध्यम होगा।

राष्ट्रीय अखंडता

संसद् ने किसी भी राज्य अथवा क्षेत्र को भारतीय संघ से विलग होने की बात न सोचने देने के लिए संविधान में संशोधन करके सही कदम उठाया है। यदि कोई व्यक्ति, समूह या क्षेत्र भारत की अखंडता और प्रभुसत्ता को चुनौती देता या कमजोर करता है तो उसे सख्ती और मजबूती से दबा देना होगा। हमारे राजनीतिक जीवन में जो तत्व अबतक भारतीय संघ से अलग होने का प्रचार करते आये हैं, उन्हें अपने तरीके बदलना चाहिए और राष्ट्रीय नेतृत्व का अनुगमन करना चाहिए। जैसा कि पहले कहा गया है, भारत सरकार और योजना-आयोग देश के सभी भागों का न्यायोचित और संतुलित तरीके से विकास करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। अगर किसी राज्य अथवा क्षेत्र को अभी भी

शिकायत हो तो अवश्य ही बहुत सावधानी और सचाई से विचार किया जाना चाहिए। किंतु समाजवादी लोकतंत्री भारत संघ से अलग होने की अनर्गल चर्चा को सहन नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसी चर्चा सार्वभौम गणराज्य के मूल अस्तित्व के लिए घातक है।

७

तटस्थता और विश्वशांति

भारत का समाजवाद तटस्थता और पंचशील की नीति के द्वारा विश्वशांति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की स्थापना के लिए सचाई से काम कर रहा है। तीसरी पंचवर्षीय योजना की पहली वाक्यावली में ही कहा गया है, "भारत के विकास का बुनियादी लक्ष्य विश्वशांति के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है और उसी पर निर्भर करता है। आधुनिक शस्त्रास्त्रों की मदद से लड़ा गया युद्ध न केवल प्रगति की आशाओं को समाप्त कर देगा, बल्कि मानव-जाति के अस्तित्व को भी खतरे में डाल देगा। इसलिए राष्ट्रीय प्रगति के लिए शांति का कायम रहना, निहायत जरूरी और आवश्यक शर्त है।"

भारत की तटस्थता अथवा गुटों से अलग रहने की नीति उसकी अहिंसा और विश्व-बंधुत्व की प्राचीन परंपराओं के अनुकूल है। वह भगवान् बुद्ध की महान् शिक्षाओं, सम्राट अशोक के आदेशों और महात्मा गांधी के आदर्शों के अनुसार है। नेहरूजी दोनों शक्ति गुटों के सैनिक गठ-बंधनों से बिल्कुल अलग रहकर तटस्थता अथवा 'शांतिमय सहअस्तित्व' की नीति के शानदार निर्माता थे। जिस अटूट श्रद्धा और दृढ़ता के साथ भारत इस नीति का अनुसरण कर रहा है, इससे एशिया और अफ्रीका के अनेक नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों को प्रेरणा मिली है। यद्यपि हमारी नीति को अनेक पश्चिमी लोकतंत्री देशों ने शंका और संदेह की दृष्टि से देखा था, किंतु चीनी आक्रमण से उत्पन्न स्थिति ने उसकी उपयुक्तता और व्यावहारिक बुद्धिमत्ता को पर्याप्त मात्रा में प्रमाणित कर दिया है। यह बड़े संतोष का विषय है कि अमरीका और रूस दोनों ही हमसे इस कठिन स्थिति का सामना करने के लिए अब तटस्थ बने रहने का आग्रह कर रहे हैं। कारण, वे दोनों ही अनुभव करते

हैं कि भारत यदि किसी शक्ति-गुट में प्रत्यक्ष रूप में शामिल हुआ तो विश्व-युद्ध हो जायगा। श्री हग गेट्सकल के शब्दों में अनेक एशियाई देशों की तटस्थतावादी नीति के मूल में यह भावना है कि "उन्हें अपनी अर्थ-व्यवस्थाओं का विकास करने में अपनी सब शक्ति लगानी चाहिए और रक्षा पर भारी व्यय नहीं करना चाहिए।" इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम भारत और मानवता के हित में तटस्थता की नीति पर नई श्रद्धा के साथ डटे रहें। यह कुछ अजीब-सा लगता है कि हमारे देश में अब भी कुछ ऐसे व्यक्ति और समूह हैं जो भारत के पश्चिमी गुट में शामिल होने की जोरों से हिमायत करते हैं। चीनी आक्रमण से उत्पन्न संकट के समय अमरीका, ब्रिटेन और अन्य देशों ने जिस तत्परता से हमारी सहायता की, उसके लिए हम उनके आभारी हैं, किंतु हमको बिना किसी शंका के यह समझना होगा कि भारत द्वारा तटस्थता की नीति को त्यागने का विचार न केवल विश्वशांति की दृष्टि से खतरनाक होगा, बल्कि भारत की स्वतंत्रता और समृद्धि के लिए भी आत्मघातक होगा।

विज्ञान और अहिंसा

विज्ञान के इस युग में अगर कोई राष्ट्र हिंसा और अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष का मार्ग अपनाता है तो उसके फलस्वरूप सर्व संहारकारी विश्व-युद्ध छिड़ जायगा। गांधीजी ने अणुबम के लिए कहा था कि यह विज्ञान का 'अत्यंत राक्षसी' उपयोग है और उन्होंने राष्ट्रों के आपसी मतभेदों को अहिंसा के जरिये हल करने की हिमायत की थी। विनोबाजी बार-बार यह प्रत्यक्ष किंतु अक्सर भूली हुई बात दोहरा रहे हैं कि विज्ञान के साथ अहिंसा के योग से विश्वशांति स्थापित होगी और यदि उसका हिंसा के साथ गठबंधन हो गया तो वह विश्वव्यापी विनाश का जनक हो जायगा। आणविक शक्ति के विकास ने दुनिया के देशों को अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए सही चुनाव करने को विवश कर दिया है। गांधी शांति-प्रतिष्ठान ने जून १९६२ में नई दिल्ली में आणविक अस्त्र विरोधी-सम्मेलन का आयोजन करके बहुमूल्य सेवा की थी।

उसके द्वारा भारत ने आणविक युद्ध से होनेवाले महाविनाश के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की और दुनिया की महान् शक्तियों से अपील की कि वे अपने कदम पीछे हटा लें और मानव-जाति को और आनेवाली पीढ़ियों को 'अकल्पनीय महासंकट' से बचा लें। नेहरूजी ने इस सम्मेलन में भाग लिया था और आणविक अस्त्रों के परीक्षणों को न केवल स्थूल रूप में बंद करने की अपील की थी, बल्कि उन अणुबमों से भी छुटकारा पाने का आग्रह किया था जो "हमारे दिलों और दिमागों में निरंतर रोपे जा रहे हैं।"

यह अत्यधिक संतोष का विषय है कि भारत सरकार ने युद्ध-कार्यों के लिए आर्थिक शक्ति का उपयोग न करने का दृढ़ निश्चय किया है। यह निश्चय केवल नैतिक भावना से नहीं, बल्कि व्यावहारिक आवश्यकतावश किया गया है। भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल की सभा में बोलते हुए नेहरूजी ने कहा था, "हथियार नित्य बदल रहे हैं और आधुनिकतम हथियार करीब-करीब कुछ राष्ट्रों के एकाधिकार में ही हैं। वही उनका उत्पादन करते हैं, और उपयोग भी कर सकते हैं। भारत अपने सब साधन विशेष प्रकार के हथियारों के निर्माण में नहीं खर्च कर सकता। हम वर्तमान में यह नहीं कर सकते और मैं नहीं चाहता कि भविष्य में भी ऐसा किया जाय।" लोकसभा में भी नेहरूजी ने आणविक शस्त्रों का निर्माण न करने की नीति पर चलते रहने के भारत के संकल्प को दोहराया। प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री का भी यही विचार है कि भारत को फिलहाल अणुबम नहीं बनाना चाहिए।

दुनिया के भविष्य के लिए यह शुभ चिह्न है कि अमरीका, रूस और ब्रिटेन ने आणविक परीक्षणों को रोकने की सीमित संधि पर हस्ताक्षर कर आणविक शस्त्रों की समस्या को रचनात्मक दृष्टि से हल करने का प्रयास किया है। यदि इस कदम पर सही भावना से चला गया तो यथासमय आम निश्शस्त्रीकरण की पूरी संधि की जा सकेगी। अबतक स्पुतनिक "मानव की उपलब्धि और उसकी हताशा' के प्रतीक रहे हैं। लंदन के 'इकोनोमिस्ट' पत्र के शब्दों में "यह इस कारण है कि अंतरिक्ष को जीतने की वैज्ञानिक दौड़ सहयोग की भावना से नहीं, बल्कि शंका और विरोधी

प्रतियोगिताओं से प्रेरित रही है।" यह महत्व की बात नहीं कि अमरीका अथवा रूस कौन सबसे पहले चन्द्रमा अथवा अन्य नक्षत्रों पर पहुंचने में सफल होता है। किंतु यह शत-प्रतिशत निश्चित है कि यदि आधुनिक विज्ञान और अंतरिक्ष विद्या का सैनिक क्षेत्र में उपयोग किया गया तो मानव-जाति के विनाश की घंटी बज जायगी। अंतिम निष्कर्ष यह है कि राजनीतिक क्षितिज पर से युद्ध की छाया तभी हटाई जा सकती है जब घृणा के समस्त चिह्न मिटा दिये जांय। प्रोफेसर टोयनबी कहते हैं कि वैज्ञानिक शोध के दुरुपयोग का मूल कारण यह है कि "प्रकृति पर मनुष्य की विजय के साथ वैज्ञानिक स्वयं पर विजय पाने में असमर्थ रहा है।" प्रोफेसर डेवी की राय है कि असली युद्ध-क्षेत्र "हमारे और हमारी संस्थाओं के भीतर है।" श्री ममफोर्ड कहते हैं कि प्रकृति पर नियंत्रण पाने की कोशिश में "आत्म-नियंत्रण करने की हमारी बुद्धि और इच्छा लुप्त हो गई है और हमने जिस मशीन का निर्माण किया हैं, उसके हम बेबस पुर्जे बन गए हैं।"

युद्ध-कला की अर्थ-व्यवस्था

ब्रिटिश दार्शनिक बर्टरंड रसेल ने आधुनिक युद्ध-कला की अर्थ-व्यवस्था के बारे में कुछ आंखें खोल देनेवाले अंक-प्रकाशित, किये हैं। उन्होंने अनुमान लगाया है कि दुनिया के विभिन्न राष्ट्र सुरक्षा-तैयारियों पर ५० करोड़ रुपया प्रतिदिन खर्च कर रहे हैं। प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने भी यह अनुमान लगाया है कि दुनिया के अल्पविकसित देशों में करीब ५० करोड़ इन्सान भूख और अल्प-पोषण के शिकार हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विकसित राष्ट्र यदि सुरक्षा-व्यय में थोड़ी बचत करें तो काफी रुपया बच सकता है और विकासोन्मुख देशों को अपना कृषि और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने और अपने करोड़ों अधभूखे और अध-नंगे लोगों को खाना और जीवन की अन्य आवश्यकताएं सुलभ करने में उस रुपये का आर्थिक सहायता के रूप में उपयोग किया जा सकता है। अमरीका की राष्ट्रीय आयोजन संस्था के हाल के प्रकाशन में बताया गया है कि अभी से लगा कर सन् १९७० तक बड़े राष्ट्र हथियारों और

आणविक शास्त्रों पर करीब २०० खर्ब डालर खर्च कर चुकेंगे। जबतक इस संख्यातीत विनाशक व्यय को सारी दुनिया के जीवन-मान को ऊंचा उठाने के लिए उत्पादक और रचनात्मक कामों पर खर्च नहीं किया जाता, तबतक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, दोनों क्षेत्रों में, समाजवादी समाज की कल्पना करना बेकार होगा।

उत्पादन के तकनीक

प्रोफेसर बर्नल ने बड़े परिश्रम के साथ यह बताया है कि जितना विज्ञान हम जान चुके हैं, उसका प्रयोग कर जितनी संपत्ति हम प्राप्त कर सकते हैं, वह उस संपत्ति से कहीं अधिक होगी जो हम अत्यंत उपजाऊ प्रदेशों की जीत से हासिल कर सकेंगे। जिन भौतिक लक्ष्यों के लिए राष्ट्र सदियों लड़ते रहे हैं और जिनके लिए लड़ने को तैयार हैं, वे उन लक्ष्यों की तुलना में बिल्कुल तुच्छ हैं, जो शांतिकाल में अधिक तेजी के साथ उतने ही परिश्रम से प्राप्त किये जा सकते हैं। औद्योगिक कच्चामाल, तेल और कोयला पाने के लिए नये प्रदेश जीतने की कोशिश करने के बजाय डा० बर्नल बताते हैं कि किस प्रकार आणविक और हवा, पानी और सूरज की किरणों जैसे प्राकृतिक साधनों से प्रचुर शक्ति पैदा की जा सकती है। कृषि के क्षेत्र में उपयुक्त और अधिक उपज देनेवाले पौधे उगाये जा सकते हैं और प्रतिरोधक किस्मों को पैदा और विकसित करने के नव-आविष्कृत तरीकों से प्रति एकड़ अतिरिक्त उपज हासिल की जा सकती है। यह अब व्यापक रूप में स्वीकार किया जाता है कि कृषि-विषयक आधुनिक वैज्ञानिक खोज से ऐसी काफी संभावनाएं उत्पन्न हुई हैं कि अभी की अपेक्षा दूनी-तिगुनी जन-संख्या का भरण-पोषण किया जा सके। उत्पादन के क्षेत्र में ऐसी असीम संभावनाओं के होते हुए नये उपनिवेश या 'प्रभाव' क्षेत्र हासिल करने के लिए राष्ट्रों के बीच संघर्ष होना बिल्कुल अर्थ-शून्य होगा। ऐसे संघर्षों को 'आत्मघाती पागलपन' की संज्ञा देनी पड़ेगी।

विश्व-खाद्य कांग्रेस के सम्मुख ५ जून १९६३ को बोलते हुए अमरीका के कृषि मंत्री श्री ऑरविली फ्रीमैन ने कहा था, "यह शंकास्पद है कि इस

पृथ्वी पर बसा हुआ राष्ट्र-समूह अधिकसमय तकअधभूखा और अधनंगा रह सकेगा।" उन्होंने आगे कहा, "दुनिया के सामने एक सर्वाधिक भाग्य-शाली ऐतिहासिक संयोग उपस्थित है। विकासोन्मुख राष्ट्र आत्मनिर्भरता की दिशा में बढ़ रहे हैं। एक ओर उन्हें खाद्य-सामग्री की बेहद जरूरत है और दूसरी ओर विकसित राष्ट्र इतना प्रचुर उत्पादन कर सकते हैं कि जो उनके लिए परेशानी का कारण होता है।"

वास्तव में, आधुनिक दुनिया में समाजवाद की कल्पना उस समय तक अधूरी रहेगी जबतक कि उसमें सभी देशों का समावेश नहीं होगा। नेहरूजी का यह दृढ़ विश्वास था कि पहले तो राष्ट्रों की सीमाओं के भीतर और अनंतर सारी दुनिया में समाजवाद की स्थापना होनी चाहिए और उसके साथ-ही-साथ सार्वजनिक हित में संपत्ति का उत्पादन और वितरण होना चाहिए। चौथाई शताब्दि पूर्व ही उन्होंने लिखा था, "भारत किधर जा रहा है? निश्चय ही, वह सामाजिक और आर्थिक समानता के महान मानव-कल्याण की ओर, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र और एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण मात्र को समाप्त करने की ओर, तथा अंतर्राष्ट्रीय सहकारी समाज-वादी विश्व-संघ के अंतर्गत राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ओर जा रहा है।"

समानता की क्रांति

किंतु यह आवश्यक है कि विश्व-समृद्धि लाने और विकासोन्मुख राष्ट्रों को गरीबी, भूख और बेकारी के दलदल से बाहर निकालने के इस महान् अभियान में विकसित देशों को बिना किसी शर्त अथवा संकीर्ण हेतुओं के सहायता का हाथ आगे बढ़ाना चाहिए। आधुनिक समाजवाद की कल्पना अधूरी रहेगी, यदि वह सब अल्पविकसित देशों को स्पर्श नहीं करेगी तथा अमीर और गरीब राष्ट्रों के बीच की चौड़ी खाई को नहीं पाटेगी। श्री बारबरा वार्ड ने बड़े शक्तिशाली रूप में कहा है कि आधुनिक दुनिया की सब से अर्थ-सूचक क्रांति "समानता की, मनुष्य की समानता और राष्ट्रों की समानता की क्रांति है।" हरेक विकासोन्मुख देश करोड़ों लोगों की सामाजिक और आर्थिक दशा तेजी से सुधारना चाहता है ताकि प्रचुरता की अर्थ-व्यवस्था का लक्ष्य सिद्ध

हो सके । इसलिए यह निहायत जरूरी है कि एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के देशों की समृद्ध-राष्ट्र सक्रिय मदद करें, ताकि वे गरीबी की लक्ष्मण-रेखा को लांघ सकें और अंतर्राष्ट्रीय सहकारी राष्ट्र-मंडल गठित करने के महान् काम में करीब-करीब बराबरी के साझीदार बन सकें। वर्तमान में ये देश न केवल आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, बल्कि निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या की जटिलता भी उन्हें परेशान कर रही है।

जिस विश्व-समाज में समृद्धि और गरीबी साथ-साथ रहने दी जायगी, वह शांति और समृद्धि का युग लाने की कभी आशा नहीं कर सकता। इस दृष्टि से, हर प्रकार का उपनिवेशवाद और शोषण समाप्त होना चाहिए। शक्तिशाली सैनिक सुरक्षा योजनाओं से साम्यवाद की चुनौती का सफल मुकाबला नहीं किया जा सकता। पश्चिम को साम्यवाद का मुकाबला करने के लिए नीति के बजाय नीति, विचार के बजाय विचार और आदर्श के बजाय आदर्श से काम लेना होगा। डॉ० फ्रॉम ने कहा है, "वर्तमान संघर्ष मनुष्य के दिमागों पर विजय पाने का संघर्ष है, इस संघर्ष में कोरे नारों और प्रचार की चालों से विजय हासिल नहीं की जा सकती। "सैनिक खतरे पर ध्यान केंद्रित करके और हथियारों की दौड़ में शामिल होकर हम विजय का एक अवसर खो देते हैं। हमें यह सिद्ध करना चाहिए कि अपने देश में और एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका में आर्थिक प्रगति और व्यक्तित्व की रक्षा, आर्थिक और सामाजिक आयोजन और लोकतंत्र संभव हो सकता है।" प्रोफेसर कोल ने दो शक्ति-गुटों के बीच आदर्शगत आधार पर शीत-युद्ध जारी रहने पर गहरी निराशा प्रकट की है। वह कहते हैं, "मै इस दुनिया में अपने को अकेला और करीब-करीब निराशा की स्थिति में पाता हूं; कारण, मैं जिन्हें समाजवादी मूल्य समझता हूं, वे दो भारी-भरकम चक्की के पाटों के बीच निर्दयतापूर्वक कुचले जा रहे हैं। एक ओर साम्यवाद की निरंकुश केंद्रवादी सत्ता है और दूसरी ओर संपत्ति और विशालता की अमरीकी अंधपूजा है। यह पूजा अपनी ही खातिर की जा रही है;

मानव बंधुत्व की वह माध्यम नहीं है, जो कि समाजवादी श्रद्धा का मूल आधार है।"

समाजवादी देशों में असमानताएं

हमें विश्व राजनीति के एक नये और कुछ अजीब लक्षणों पर भी ध्यान देना चाहिए। वह यह है कि स्वयं समाजवादी देशों में असमानता की खाई बढ़ रही है। मोशी (टांगानीका) में अफ्रीकी-एशियाई एकता सम्मेलन में राष्ट्रपति नियरेरे ने कहा था, "समाजवाद का मूल आधार ही यह है कि वह संपत्ति का शक्ति या प्रतिष्ठा के प्रतीक रूप में उपयोग करने से इन्कार करता है।" किंतु समाजवादी देशों में वर्ग और श्रेणियां सतत बढ़ रही हैं। अब यहां केवल समृद्ध पूंजीवादी देश ही नहीं है, बल्कि गरीब समाजवादी देश भी हैं। और, समाजवादी देश स्वयं राष्ट्रों के बड़े समाज की एक इकाई के रूप में अब वही गलती कर रहे हैं जो पहले पूंजीवादी देशों ने की थी। राष्ट्रपति नियरेरे का कहना है कि "अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वे समाजवादी देश पूंजीवादी कार्यों के निमित्त सत्ता और प्रभाव हासिल करने के लिए संपत्ति का उपयोग कर रहे हैं।" उनकी इस चेतावनी पर उन सभी लोगों को गंभीरता से विचार करना चाहिए, जो विश्व-समाजवादी समाज कायम करना चाहते हैं।

विश्व-नागरिकता

जब हम विश्व-संगठन की बात सोचने लगेंगे तभी दुनिया के विभिन्न राष्ट्रों में सच्ची आर्थिक और राजनीतिक समानता कायम कर सकेंगे। इंग्लैंड के मजदूर नेता श्री एन्यूरिन बेविन ने कुछ वर्षों पहले कहा था, "राष्ट्रीय सार्वभौमिकता ऐसा शब्द है, जिसे इतिहास अर्थ-हीन बना रहा है।" इस आणविक युग में एकमात्र व्यावहारिक हल यही हो सकता है, चाहे वह इस समय कितना ही कठिन क्यों न प्रतीत हो कि विश्व-सरकार के अंतिम लक्ष्य के हित में अथवा जैसा कि कवि टेनीसन ने अनेक वर्षों पहले कहा था, 'मानव की पार्लमेंट' की खातिर राष्ट्रीय हितों को गौण स्थान दिया जाय। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि

कोई भी भावी युद्ध जो आज के घातक शस्त्रास्त्रों से लड़ा जायगा, अपने पीछे विजेता नहीं, बल्कि पराजित ही छोड़ेगा। जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० आइंस्टीन से तीसरे विश्वयुद्ध के शस्त्रास्त्रों के बारे में पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता। किंतु मैं जानता हूं कि चौथे विश्वयुद्ध के शस्त्रास्त्र क्या होंगे—चट्टानें।"

लंबे चलनेवाले सम्मेलनों और 'शिखर सम्मेलनों' से विश्व-संगठन कायम नहीं किया जा सकेगा। अंततः जब राष्ट्र राष्ट्रवाद की उदार कल्पना का विकास करेंगे और विश्व-संस्था के अनुशासन को राजी-खुशी से स्वीकार करेंगे तभी शांति और सहयोग का वातावरण पैदा हो सकेगा। ११ जून १९६३ को संयुक्त राष्ट्र-संघ की साधारण सभा के विशेष अधिवेशन में बोलते हुए डॉ० राधाकृष्णन् ने कहा था कि "राष्ट्रों को विश्व-व्यवस्था के लिए अपनी प्रभुसत्ता का एक अंश छोड़ना चाहिए और अपने मतभेदों का समाधान संधि-चर्चा द्वारा करना चाहिए।" इसलिए हर देश के नागरिकों को अब दूसरे प्रकार की 'विश्व-नागरिकता' का विकास करना चाहिए, जिसके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र एक से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाले मामलों में अंतर्राष्ट्रीय संगठन के अनुशासन को मानने के लिए तैयार होगा। हम आशा करते हैं कि भविष्य में दुनिया के प्रमुख राष्ट्र ऐसी विश्व-सरकार की रूपरेखा बनायंगे जो स्थायी शांति का मार्ग प्रशस्त करेगी और मानवता को नये युद्ध के भय से मुक्ति प्रदान करेगी।

राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीयवाद

जब हम अंतर्राष्ट्रीयवाद और विश्वशांति की चर्चा करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम राष्ट्र के रूप में सोचना बंद कर देते हैं। जैसा कि बार-बार कहा गया है, भारत में हमको ऐसा उदार राष्ट्रवाद विकसित करने की कोशिश करनी चाहिए जो अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के अनुकूल होगा। नेहरूजी ने कहा है, "राष्ट्रवाद का हर देश में स्थान है और उसे पुष्ट किया जाना चाहिए। किंतु वह आक्रामक नहीं होना चाहिए और अंतर्राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक भी नहीं होना

चाहिए ।" राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने अपने गणराज्य-दिवस के संदेश में कहा है, "हमारे सामने यह विकल्प नहीं है कि हम राष्ट्रवाद अथवा अंतर्राष्ट्रीयवाद दोनों में से किसको स्वीकार करें। अंतर्राष्ट्रीयवाद बड़ा आदर्श है, जो हमारी राष्ट्रवाद की कल्पना से मेल खाता है ।" महात्मा गांधी ने इसी विचार को अपने ही अर्थभरे शब्दों में यों प्रकट किया है, "मैं अपने घर के चारों ओर दीवारें खड़ी नहीं करना चाहता और न अपनी खिड़कियों को बंद करना चाहता हूं । मैं चाहता हूं कि सब देशों की संस्कृतियों की वायु पूरी स्वतंत्रता के साथ मेरे घर के आस-पास बहे । किंतु मैं उनमें से किसी को अपने पांव नहीं उखाड़ने दूंगा ।"

समाजवाद और युद्ध

यह वास्तव में दुःखजनक है कि जब अमरीका और रूस सहित सारी दुनिया एक विश्व की और आम निरशस्त्रीकरण तथा आणविक युद्ध को समाप्त करने के बारे में गंभीरता से सोच रही है, उस समय चीनी नेता साम्यवाद अथवा समाजवाद के प्रसार के लिए "युद्ध अनिवार्य है" इस सिद्धांत की जोरों से हिमायत कर रहे हैं । वे समाजवादी जगत और साम्राज्यवाद के बीच क्रांतिकारी संघर्ष द्वारा आमूल-चूल तस्फिया कर लेना चाहते हैं । रूस के भूतपूर्व प्रधान-मंत्री श्री ख्रुश्चेव और पूर्वी यूरोप के करीब-करीब सभी साम्यवादी देशों के नेताओं ने चीनी नेताओं की कड़ी आलोचना की थी । श्री ख्रुश्चेव ने क्यूबा के प्रधान-मंत्री श्री कास्ट्रो के सम्मान में क्रेमलिन में आयोजित समारोह में कहा था, "अगर कोई कहता है कि क्रांति के लिए युद्ध जरूरी है तो उसका उत्तर यह होगा कि युद्ध में श्रमिक ही सबसे अधिक मरते हैं । यह पागलों का प्रलाप है । मार्क्सवाद—लेनिनवाद के साथ उसका कोई सरोकार नहीं है ।" रूसी और चीनी नेताओं में मतभेद की खाई आज भी उतनी ही चौड़ी है । यह अर्थ-सूचक है कि मार्क्स और इंजेल्स भी मानते थे कि "युद्ध आंतरिक क्रांतिकारी आंदोलनों के विकास में बाधक होता है और आंतरिक प्रगतिशील क्रियाओं पर रोक लगाता है ।" वे युद्ध-विरोधी और निरशत्रीकरण पक्षपाती संघर्ष को लोकतंत्र और समाज-

वाद के लिए होनेवाले संघर्ष का मूलभूत अंग मानते थे।

चीन ने भारत पर जो अकारण आक्रमण किया, उससे सारी दुनिया के अंतःकरण को आघात पहुंचा। हिंसा और युद्ध के द्वारा उसकी विस्तार-वादी नीति का साम्यवादी नेताओं तक ने कड़ी और स्पष्ट भाषा में खंडन किया है। यह खेद का विषय है कि चीन की नीति में कोई परि-वर्तन नहीं हुआ है और उसने हाल के भारत-पाक संघर्ष में टांग अड़ाने और स्थिति को पेचीदा बनाने की कोशिश की थी। चीन चाहता है कि एशिया के इस भाग में गड़बड़ी और उथल-पुथल हो, ताकि उसे अपना प्रभाव बढ़ाने का अवसर मिले। और इस प्रकार चीन विश्व-शांति और विश्व-मैत्री के लिए खतरा बना हुआ है। किंतु हम आशा करते हैं कि अंत में चीनी नेताओं में सुबुद्धि का उदय होगा और वे समाजवाद के हित में उल्टी राह का परित्याग कर देंगे।

८

कार्यक्रमों पर अमल की समस्याएं

कृषि और उद्योग के क्षेत्र में विकास-कार्यक्रम समाजवादी आदर्शों की दृष्टि से हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करने में उसी अवस्था में सफल हो सकते हैं, जब उन पर लक्ष्यों के अनुपात में अमल किया जाय और अतिरिक्त उत्पादन भौतिक साधनों और लगी हुई पूंजी के अनुपात में हो। यह साफतौर से स्वीकार करना होगा कि आयोजन और अमल, नीति और प्रशासन के बीच दृष्टव्य खाई रही है। डा० देशमुख ने कहा है, "जहां व्यावसायिक प्रशासन में सुधार हो रहा है, वहां राज्य-प्रशासन की हालत खराब हो रही है।" इसलिए यह जरूरी है कि इस कमी को, विशेषकर हमारी सीमाओं पर उत्पन्न संकट की स्थिति को देखते हुए, जल्दी-से-जल्दी दूर किया जाय।

सिंचाई और बिजली

कृषि के क्षेत्र में, बहुद्देश्यीय नदी-घाटी-योजनाओं से सिंचाई और बिजली के मामले में अबतक हम पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं कर पाये हैं। तीसरी योजना के अंततक बड़ी और मध्यम आकार की सिंचाई परियोजनाओं के लिए राज्य सरकारों के नाम केंद्रीय ऋण की राशि १४५० करोड़ रुपया, छोटी सिंचाई परियोजनाओं के लिए करीब ५०० करोड़ रुपया और जल-विद्युत एवं अन्य विद्युत परियोजनाओं के लिए १८३० करोड़ रुपया हो जायगी। वर्तमान में सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं के संचालन में काफी घाटा हो रहा है और उसकी पूर्ति राज्य सरकारों के राजस्व के खातों से होती है। जैसा कि स्वर्गीय श्री वी० टी० कृष्णमाचार्य ने कहा था, यह स्थिति अनिश्चित कालतक जारी नहीं रह सकती। उन्होंने लिखा है, "सिंचाई और विद्युत प्रणा-

लियों को राज्य सरकारों और विद्युत मंडलों को इस तरह चलाना चाहिए कि उनको ठीक हालत में रखते हुए मुनाफा हो, जिससे ऋणों का सूद दिया जा सके और घिसाई-कोष का भी निर्माण हो सके। सिंचाई और बिजली के व्यावसायिक आधार पर अलग हिसाब रखे जांय और उन्हें प्रति वर्ष विधान सभा के सामने रखा जाय और उस पर चर्चा हो।......राज्य सरकारों की वार्षिक योजनाओं को जब योजना-आयोग के सामने रखा जाय, उस समय यह सिंहावलोकन उनका अंग होना चाहिए।"

सिंचाई-सुविधाओं के पूरे उपयोग की समस्या देश के सामने उपस्थित है और उस पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है। अगर किसान आवश्यक खेतों की नालियां खोद लेते हैं तो यह अनुमान किया जाता है कि वर्तमान बड़ी और मध्यम आकार की सिंचाई परियोजनाओं से करीब ३० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई हो सकती है। योजना-आयोग राज्य सरकारों से अनुरोध करता आ रहा है कि वे किसानों से उनके परंपरागत दायित्वों का पालन कराने के लिए आवश्यक कानून बनायें। पिछले दिनों, योजना और संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों के वरिष्ठ अधिकारियों के दल राज्यों में गये थे। उनका उद्देश्य था कि संकट-काल के कारण जो अनुकूल वातावरण पैदा हुआ है, उसका लाभ उठा कर खेतों की नालियां तेजी से खुदवाई जायं। हमें निश्चित आशा है कि स्थिति में संतोषजनक सुधार होगा।

सामुदायिक-विकास-आंदोलन

सामुदायिक-विकास-आंदोलन को कृषि उत्पादन बढ़ाने के अपने आर्थिक लक्ष्य की पूर्ति में जुट जाना चाहिए। पंचायती-राज का बुनियादी लक्ष्य यह है कि हमारे करोड़ों किसान नकदी और खाद्यान्नों की फसलों में खेती का उत्पादन बढ़ाने में हाथ बंटायें। यह देखा गया है कि अनेक स्थानों में पंचायत-संस्थाएं ग्राम-उत्पादन योजनाओं की अपेक्षा प्रशासनिक समस्याओं पर अधिक ध्यान देती हैं। राज्य सरकारों को इस प्रवृत्ति पर निरंतर अंकुश लगाना चाहिए, अन्यथा इस क्रांतिकारी कार्यक्रम को शुरू के करने के

वांछित परिणाम लाने का सारा उद्देश्य ही विफल हो जायगा।

पिछले दिनों, संकटकालीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने ग्राम स्वयंसेवक दल का देशव्यापी कार्यक्रम शुरू किया। इस योजना का भी बुनियादी लक्ष्य कृषि-पैदावार बढ़ाने के काम में देहातों की जन-शक्ति का उपयोग करना है। यदि शुरू से ही उचित ध्यान नहीं दिया गया तो यह कार्यक्रम भी नागरिक सुरक्षा और शारीरिक प्रशिक्षण के अधिक दिखाऊ पहलुओं पर ध्यान देकर अपने रास्ते से भटक सकता है। सरकार ने यह निश्चय किया है कि ग्रामसेवकों अथवा ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं का सारा समय और शक्ति कृषि-पैदावार कार्यक्रमों में खर्च हो। विकास-कर्मचारियों की कार्य-सूची में संशोधन करके और परिणामों पर नियंत्रण रखकर और उनका मूल्यांकन कर इस आदेश पर विस्तार से अमल किया जाय।

स्थानीय आयोजन

पंचायत-प्रणाली स्थानीय विकास के लिए स्थानीय साधन जुटाने में भी सहायक होती है। साधारणतया, लोग किसी दूरवर्त्ती सत्ता को टैक्स देना पसंद नहीं करते। कारण, वह उनकी तात्कालिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने की ओर सक्रिय नहीं होती। उन्हें ग्रामसंस्था को पैसा देने में आपत्ति नहीं होगी जो उनकी रोजमर्रा की समस्याओं और कोशिशों के प्रति सजग होती है और उनका लोगों की ही देख-रेख में स्थानीय परियोजनाओं द्वारा हल करती है। श्री उरसुल हिक्स ने लिखा है, "स्थानीय टैक्सों की अदायगी और स्थानीय सेवाओं के उपभोग में इतना प्रत्यक्ष और प्रकट संबंध है, करदाता उसका इतना अधिक औचित्य समझते हैं और यह उनकी दिलचस्पी को इतना अधिक जगाता है कि जितना राष्ट्रीय बजट का दूरवर्ती संबंध नहीं कर सकता, जो अक्सर मुश्किल से दिखाई देता है।" विभिन्न ग्राम्य कार्यक्रमों पर ज्यादा अच्छी तरह और उद्देश्य परक ढंग से अमल करने के लिए पंचायती राज-आंदोलन का व्यावहारिक मूल्य और अर्थ महत्वपूर्ण है।

कृषि-आंकड़े

सामुदायिक विकास खंड की सफलता का अनुमान और मूल्यांकन करने के रास्ते में एक मुख्य कठिनाई यह रही है कि हर वर्ष के विकास-खंडीय और ग्राम-स्तरीय कृषि-पैदावार के विश्वस्त आंकड़े नहीं मिलते। इस समय, जिला-स्तरीय-उत्पादन के आंकड़े ही उपलब्ध हैं। और फल-स्वरूप सामुदायिक विकास-खंडों के कर्मचारियों के अच्छे-बुरे या साधारण कामों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। योजना-आयोग ने खाद्य और कृषि मंत्रालय, सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय और केंद्रीय-अंक-संगठन की सहायता से एक ऐसी व्यावहारिक योजना बनाई है जिसके द्वारा हर विकास-खंड और यदि संभव हो तो हर गांव की मुख्य फसलों के विश्वस्त उत्पादन-आंकड़े उपलब्ध हो सकेंगे। वर्तमान ग्रामसेवकों, पटवारियों और विस्तार कर्मचारियों को फसल कटाई की तकनीक का व्यापक पैमाने पर प्रशिक्षण देकर यह उद्देश्य सिद्ध किया जा सकेगा। एक बार योजना पर अमल शुरू हो गया कि सामुदायिक-विकास-आंदोलन में फुर्ती की भावना उत्पन्न हो जायगी और सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों प्रकार के कर्मचारी अपनी-अपनी जिम्मेदारियों को अधिक गंभीरतापूर्वक निभाने को बाध्य होंगे। तब, व्यक्तिगत अधि-कारियों की जिम्मेदारी स्थिर की जा सकेगी और समुचित कार्रवाई की जा सकेगी।

मूल्य-नीति

तीसरी पंचवर्षीय योजना का एक पूरा अध्याय मूल्य-नीति के संबंध में है, विशेषकर उसमें कृषि मूल्यों की चर्चा की गई है। उसमें कहा गया है, "उत्पादकों को पूरा भरोसा होना चाहिए कि पैदावार बढ़ाने के लिए जो अतिरिक्त परिश्रम और पूंजी विनियोजन करना होगा, उसका उन्हें पर्याप्त प्रतिफल मिलेगा।" योजना की अवधि में महत्वपूर्ण खाद्यान्नों और नकद फसलों—चावल, गेहूं, कपास, गन्ना, पटसन-की न्यूनतम लाभदायक कीमत मिलने का आश्वासन पैदावार बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रेरणा देगा। यह निर्णय किया गया है कि सरकार विभिन्न

फसलों को किस कीमत पर खरीदेगी, इसकी घोषणा बुआई के मौसम से बहुत पहले कर देनी चाहिए। बहुत से कदम उठाये गये हैं, खास कर पटसन के संबंध में, और उनके संतोषजनक परिणाम आये हैं।

खाना, कपड़ा और अन्य आवश्यक उपभोक्ता सामग्री की कीमतें उचित स्तर पर स्थिर करने के लिए तीसरी योजना में पर्याप्त संचित भंडार बनाने पर जोर दिया गया है। इन भंडारों का उपयोग समय-समय पर किसानों और शहरी उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने में किया जा सकता है। जब खाद्यान्नों की कीमतें लाभदायक स्तर से नीची जायं तो भंडार-संग्राहक-एजेंसी को बाजार में आकर अनाज की खरीद करना चाहिए और जब कीमतें अनुचित रूप से बढ़ने लगें तो उसी एजेंसी को कीमतों के स्तर को गिराने के लिए अपना माल बाजार में बेचना शुरू कर देना चाहिए। तीसरी योजना का कहना है, "यह खरीद-बिक्री की कार्रवाई लचीले ढंग से और अनेक स्थानों पर होनी चाहिए, ताकि जहां जरूरी हो, वहां उसका प्रत्यक्ष असर पड़े।"

भंडार बनाने की योजना के लिए स्वभावतः सरकार के सीधे नियंत्रण में पर्याप्त गोदामों की आवश्यकता होगी। तीसरी योजना की अवधि में, केंद्रीय सरकार की माल को जमा रखने की क्षमता करीब ५० लाख टन करने का लक्ष्य स्थिर किया गया है। इसमें से ३५ लाख टन के लिए-सरकार अपने गोदाम बनायगी और शेष के लिए स्थान किराये पर लेगी। इसके अलावा, क्रय-विक्रय सहकारी संस्थाओं और प्राथमिक संस्थाओं के गोदामों की क्षमता करीब २० लाख टन हो जायगी।

केंद्रीय और राज्यों के गोदाम-निगम भी प्रति वर्ष अपनी क्षमता बढ़ा रहे हैं। किंतु यह चिंता का विषय है कि इन गोदाम-निगमों के ८० प्रतिशत स्थान का उपयोग किसान और उनकी क्रय-विक्रय सहकारी संस्थाएं नहीं करते, जिनके लिए कि उसका निर्माण हुआ है, बल्कि निजी व्यापारी करते हैं। इस कमी को जल्दी-से-जल्दी दूर करना आवश्यक है, ताकि किसानों को अपनी पैदावार की अच्छी कीमत मिल सके और बिचौलिये बीच से हट जायं। चावल और गेहूं के संग्रह की मात्रा भी काफी बढ़ाने की आवश्यकता है।

कृषि-आंकड़े

सामुदायिक विकास खंड की सफलता का अनुमान और मूल्यांकन करने के रास्ते में एक मुख्य कठिनाई यह रही है कि हर वर्ष के विकास-खंडीय और ग्राम-स्तरीय कृषि-पैदावार के विश्वस्त आंकड़े नहीं मिलते। इस समय, जिला-स्तरीय-उत्पादन के आंकड़े ही उपलब्ध हैं। और फल-स्वरूप सामुदायिक विकास-खंडों के कर्मचारियों के अच्छे-बुरे या साधारण कामों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। योजना-आयोग ने खाद्य और कृषि मंत्रालय, सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय और केंद्रीय-अंक-संगठन की सहायता से एक ऐसी व्यावहारिक योजना बनाई है जिसके द्वारा हर विकास-खंड और यदि संभव हो तो हर गांव की मुख्य फसलों के विश्वस्त उत्पादन-आंकड़े उपलब्ध हो सकेंगे। वर्तमान ग्रामसेवकों, पटवारियों और विस्तार कर्मचारियों को फसल कटाई की तकनीक का व्यापक पैमाने पर प्रशिक्षण देकर यह उद्देश्य सिद्ध किया जा सकेगा। एक बार योजना पर अमल शुरू हो गया कि सामुदायिक-विकास-आंदोलन में फुर्ती की भावना उत्पन्न हो जायगी और सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों प्रकार के कर्मचारी अपनी-अपनी जिम्मेदारियों को अधिक गंभीरतापूर्वक निभाने को बाध्य होंगे। तब, व्यक्तिगत अधि-कारियों की जिम्मेदारी स्थिर की जा सकेगी और समुचित कार्रवाई की जा सकेगी।

मूल्य-नीति

तीसरी पंचवर्षीय योजना का एक पूरा अध्याय मूल्य-नीति के संबंध में है, विशेषकर उसमें कृषि मूल्यों की चर्चा की गई है। उसमें कहा गया है, "उत्पादकों को पूरा भरोसा होना चाहिए कि पैदावार बढ़ाने के लिए जो अतिरिक्त परिश्रम और पूंजी विनियोजन करना होगा, उसका उन्हें पर्याप्त प्रतिफल मिलेगा।" योजना की अवधि में महत्वपूर्ण खाद्यान्नों और नकद फसलों—चावल, गेहूं, कपास, गन्ना, पटसन-की न्यूनतम लाभदायक कीमत मिलने का आश्वासन पैदावार बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रेरणा देगा। यह निर्णय किया गया है कि सरकार विभिन्न

फसलों को किस कीमत पर खरीदेगी, इसकी घोषणा बुआई के मौसम से बहुत पहले कर देनी चाहिए। बहुत से कदम उठाये गये हैं, खास कर पटसन के संबंध में, और उनके संतोषजनक परिणाम आये हैं।

खाना, कपड़ा और अन्य आवश्यक उपभोक्ता सामग्री की कीमतें उचित स्तर पर स्थिर करने के लिए तीसरी योजना में पर्याप्त संचित भंडार बनाने पर जोर दिया गया है। इन भंडारों का उपयोग समय-समय पर किसानों और शहरी उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने में किया जा सकता है। जब खाद्यान्नों की कीमतें लाभदायक स्तर से नीची जायं तो भंडार-संग्राहक-एजेंसी को बाजार में आकर अनाज की खरीद करना चाहिए और जब कीमतें अनुचित रूप से बढ़ने लगें तो उसी एजेंसी को कीमतों के स्तर को गिराने के लिए अपना माल बाजार में बेचना शुरू कर देना चाहिए। तीसरी योजना का कहना है, "यह खरीद-बिक्री की कार्रवाई लचीले ढंग से और अनेक स्थानों पर होनी चाहिए, ताकि जहां जरूरी हो, वहां उसका प्रत्यक्ष असर पड़े।"

भंडार बनाने की योजना के लिए स्वभावतः सरकार के सीधे नियंत्रण में पर्याप्त गोदामों की आवश्यकता होगी। तीसरी योजना की अवधि में, केंद्रीय सरकार की माल को जमा रखने की क्षमता करीब ५० लाख टन करने का लक्ष्य स्थिर किया गया है। इसमें से ३५ लाख टन के लिए सरकार अपने गोदाम बनायगी और शेष के लिए स्थान किराये पर लेगी। इसके अलावा, क्रय-विक्रय सहकारी संस्थाओं और प्राथमिक संस्थाओं के गोदामों की क्षमता करीब २० लाख टन हो जायगी।

केंद्रीय और राज्यों के गोदाम-निगम भी प्रति वर्ष अपनी क्षमता बढ़ा रहे हैं। किंतु यह चिंता का विषय है कि इन गोदाम-निगमों के ८० प्रतिशत स्थान का उपयोग किसान और उनकी क्रय-विक्रय सहकारी संस्थाएं नहीं करते, जिनके लिए कि उसका निर्माण हुआ है, बल्कि निजी व्यापारी करते हैं। इस कमी को जल्दी-से-जल्दी दूर करना आवश्यक है, ताकि किसानों को अपनी पैदावार की अच्छी कीमत मिल सके और बिचौलिये बीच से हट जायं। चावल और गेहूं के संग्रह की मात्रा भी काफी बढ़ाने की आवश्यकता है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने १० जनवरी १९६२ को भुवनेश्वर अधिवेशन में 'लोकतंत्र और समाजवाद' पर जो प्रस्ताव स्वीकार किया है, उसमें कम आयवाले वर्गों और गरीब वर्गों के महत्वपूर्ण हितों की रक्षा करने के लिए आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को नियंत्रित करने पर उचित जोर दिया गया है। उसमें यह ठोस सिद्धांत भी प्रतिपादित किया गया है, "समाज के व्यापक हितों के लिए आवश्यक होने पर ही नियंत्रण लागू किये जायं।" प्रस्ताव का कहना है, "कार्य-कुशल और ईमानदार प्रशासन के द्वारा और जन-सहयोग हासिल करके नियंत्रणों के अमल को सफल बनाने की हर कोशिश की जानी चाहिए।"

भारत सरकार ने खाना, कपड़ा और दूसरी चीजों की कीमतें स्थिर करने के लिए अनेक कदम उठाये हैं। इसमें संचित भंडार बनाने, थोक व्यापार को नियंत्रित करने, मूल्य-सूची प्रदर्शित करने और उपभोक्ता एवं विभागीय बिक्री भंडार कायम करने आदि बातें शामिल हैं। किंतु यह मानना होगा कि ये उपाय स्थिति का भली प्रकार मुकाबला करने में समर्थ नहीं हुए हैं। इस दिशा में कहीं अधिक प्रयत्न करने होंगे और आवश्यक होने पर भारत-रक्षा नियमों का उपयोग करने में भी संकोच नहीं करना होगा। थोक व्यापार का समाज के हित में कड़ाई के साथ नियंत्रण और नियमन करना होगा।

प्रगतिशील किसानों का योग

यद्यपि भारत में कुछ महत्वपूर्ण खाद्यान्नों और नकद फसलों का उत्पादन करीब-करीब दुनिया में सबसे कम है, किंतु देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगतिशील किसानों ने अधिकतम पैदावार करके दिखाई है। इसलिए यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रगतिशील किसानों के मूल्यवान अनुभव को हमारे लाखों-करोड़ों किसानों में लाभदायिक रीति से फैलाया जाय। योजना-आयोग के कृषि विशेषज्ञ दल के आदेश पर हमारे किसानों के परिपक्व अनुभव को विकास-खंडों और जिलों में और विभिन्न राज्यों में भी फैलाने की एक योजना बनाई गई है।

आवश्यक सामग्री की उपलब्धि

बेशक, कृषि-क्षेत्र में हमारी विकास योजनाओं की सफलता के लिए यह बहुत जरूरी है कि किसानों को समय पर ऋण, बीज, खाद्य और सिंचाई तथा पौध-संरक्षण की सुविधाएं दी जायं। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर प्रशासन की मशीनरी को चुस्त बनाना होगा। राज्यों के कृषि और सामुदायिक विकास-मंत्रियों की संयुक्त कांफ्रेंस द्वारा नियुक्त उच्च स्तरीय कार्यकारी दल ने किसानों को ज्यादा अच्छी मदद देने के लिए समन्वित प्रशासन तंत्र की स्थापना के बारे में मूल्यवान सुझाव दिये हैं। इनमें से अनेक सिफारिशों को राज्य-सरकारें कार्यान्वित कर चुकी हैं।

केंद्रीय सरकार ने पिछले दिनों एक कृषि-उत्पादन-बोर्ड नियुक्त किया है। उसमें संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों और योजना-आयोग के प्रतिनिधि हैं। यह कृषि-कार्यक्रमों की प्रगति का सिंहावलोकन करेगा और कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करेगा, विशेषकर किसानों को जरूरी चीजें पाने में जो दिक्कत पेश आती हैं, उसे हल करेगा। बोर्ड के अध्यक्ष केंद्रीय खाद्य और कृषि मंत्री हैं। उसने जोरों से काम शुरू कर दिया है और आशा है वह भारतीय कृषि को पुरानी लीक से बाहर लाने में महत्वपूर्ण योग देगा।

मानवी तत्त्व

और अंतिम, किंतु जरूरी बात यह है कि हमें अपने आयोजन में किसी भी मंजिल पर कृषि-उत्पादन के संबंध में मानवी तत्व को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। हम किसानों को उत्पादन बढ़ाने के लिए अच्छे बीज, खाद, ऋण, सिंचाई की, और दूसरी सुविधाएं दे सकते हैं, किंतु हम तबतक किसान में अपने उत्पादन-कार्य के प्रति 'उत्साह की चमक' नहीं देख सकेंगे, जबतक कि अपनी खेती की जमीन पर उसका और उसके परिवार का अधिकार नहीं होगा। खेती का यही मनोवैज्ञानिक और मानवी पहलू है, जो खेती की पैदावार बढ़ाने की समस्या

के संतोषजनक हल की कुंजी है। इस दृष्टि से, भूमि-सुधारों पर शीघ्रता से अमल होना तथा भूदान, ग्रामदान और कानून के जरिये जोतनेवालों में भूमि को न्यायोचित रीति से बांटना निर्णायक महत्व रखता है और इस कार्य को कृषि के समाजवादी आयोजन में सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। यह मानवी पहलू बीज और खाद सुलभ करने के स्थूल काम जितना प्रत्यक्ष भले ही प्रतीत न हो, किंतु भारत तथा एशिया और अफ्रीका के अन्य विकासोन्मुख देशों के खाद्य मोर्चों पर स्थायी सफलता हासिल करने के लिए बहुत जरूरी है।

राजकीय उद्योग

उद्योगों के क्षेत्र में, तीसरी योजना ने राजकीय उद्योगों की संचालन कार्यकुशलता में सुधार लाने के लिए अनेक सुझाव दिये हैं। इस्पात, खनिज और इंजीनियरी में मंत्रालय ने अलग-अलग उद्योगों को पहले से अधिक स्वयं प्रेरणा और जिम्मेदारी सौंपने के लिए अनेक निर्णय किये हैं और वित्तीय कार्य-विधियों को सरल बनाया है ताकि उद्योग जल्दी से कार्रवाई कर सकें। यह तय किया गया है कि इन उद्योगों के मुख्य प्रबंधकों को काफी समय तक अपने पदों पर बने रहने दिया जाय, जिससे उनकी कार्यकुशलता उनकी सफलता या विफलता के आधार पर आंकी जा सके। इन उद्योगों से यह भी आशा की जाती है कि वे ख़ासा-अच्छा मुनाफा कमायें। मुनाफे की यह राशि इन उद्योगों के भावी विकास और विस्तार में खर्च की जा सकती है और उससे पंचवर्षीय योजनाओं के लिए राष्ट्रीय साधनों के कोष में भी काफी वृद्धि हो सकती है।

प्रशासकीय कार्य-कुशलता सुधारने की क्रिया एक सतत क्रिया है और उसके वेग को तभी कायम रखा जा सकता है जब हर उद्योग के कार्य-कलाप का उचित मूल्यांकन किया जाय। योजनांतर्गत परियोजना समिति कुछ वर्षों से यह काम काफी सफलता के साथ कर रही है। सार्वजनिक हिसाब समिति और प्राक्कलन समिति के समान संसद ने राजकीय उद्योगों के कार्य-संचालन की सूक्ष्म समीक्षा और मूल्यांकन

करने के लिए एक विशेष कमेटी नियुक्त की है। हमें अपने औद्योगिक विकास से संबंधित तकनीकी संगठनों को मजबूत बनाने की आवश्यकता है। हमें बड़े राजकीय और निजी उद्योगों में लागत निर्धारण-पद्धति जारी करनी होगी, ताकि उत्पादन के सामान्य नियमों और मानदंडों का पालन करके कार्य-संचालन में कुशलता लाने के लिए अधिक जागरूकता पैदा की जा सके। श्री आर० एच० टॉनी के शब्दों में "लागत और मुनाफे का विवरण प्रकाशित करने का आग्रह रखा जाय तो उसका अच्छा असर होगा। क्योंकि प्रकाशन आर्थिक और राजनीतिक बुराइयों की अच्छी दवा सिद्ध होगी।" डॉ० रॉबसन लिखते हैं, "जन-संपर्क की कला अगर पूर्णतया विकसित हो तो वह इन राजकीय उद्योगों और सेवाओं के संचालन में अंततः अत्यंत महत्वपूर्ण योग दे सकती है।"

लेखा-जोखा : एक तुलना

राजकीय क्षेत्र में चलनेवाली कंपनियों के वित्तीय परिणामों के बारे में मोटा लेखा-जोखा निकालना और उनकी निजी क्षेत्र की कंपनियों से तुलना करना लाभदायक होगा। योजना-आयोग ने ३१ केंद्रीय सरकार की और २२ राज्य-सरकारों की औद्योगिक और खनिज कंपनियों का अध्ययन किया है। नतीजों से पता चलता है कि २६ कंपनियों ने पूंजी पर २ प्रतिशत से २६ प्रतिशत तक मुनाफा कमाया। रिजर्व बैंक ने हाल में निजी क्षेत्र की १००१ कंपनियों की पूंजी पर मुनाफे की दर का विश्लेषण किया था। उससे पता चला कि सन् १९६०-६१ में इन कंपनियों का औसत मुनाफा १० प्रतिशत रहा। इस तुलना से मालूम होता है कि जहां सुस्थापित सरकारी कंपनियां निजी कंपनियों के औसत मुनाफे की तुलना में ज्यादा मुनाफा कमा रही थीं, वहां नये सरकारी उद्योगों को बहुत थोड़ा मुनाफा हुआ।

यह भी ध्यान में रखना होगा कि रिजर्व बैंक के अध्ययन में शामिल निजी कंपनियां काफी लंबे समय से काम कर रही थीं। उनकी वर्तमान स्थायी संपत्ति ऐसे समय हस्तगत की गई, जब भूमि, इमारती सामान, यंत्र और साजो-सामान की कीमतें बहुत कम थीं। इसके विपरीत, अधिकांश

सरकारी कंपनियों की स्थायी संपत्ति बढ़ी हुई कीमतों पर हाल के वर्षों में प्राप्त की गई है। इसके अलावा रिजर्व बैंक के अध्ययन में निजी कंपनियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है। उसमें बड़ी और मध्यम आकार की १००१ कंपनियां शामिल थीं, जब कि निजी क्षेत्र में ३१ मार्च १९६० को कंपनियों की संख्या २६,७९६ थी। वास्तव में रिजर्व बैंक के अध्ययन में निजी क्षेत्र की चुनी हुई अच्छी कंपनियों को शामिल किया गया। यदि उसमें सारे निजी क्षेत्र का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करनेवाली कंपनियों को शामिल किया जाता तो उनके कारोबार के परिणाम कम सन्तोषजनक ही निकलते।

संक्षेप में, निजी और राजकीय क्षेत्रों में लगी पूंजी पर मुनाफे की दर संबंधी आंकड़ों की आसानी से तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी यह जाहिर है कि अनेक राजकीय उद्योगों ने प्रारंभिक कठिनाइयों और बाधाओं के बावजूद अच्छी सफलता प्राप्त की है। और भी सुधार की हमेशा ही काफी गुंजाइश रहती है और हमें उदासीनता की भावना नहीं आने देना चाहिए और प्रयत्नों को ढीला नहीं करना चाहिए। भारत की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के अंतर्गत राजकीय और निजी दोनों ही क्षेत्रों में प्रगति करनी होगी। उन्हें स्वस्थ प्रतिस्पर्धा और अनुकरण की भावना के साथ अपनी कार्यकुशलता को बढ़ाने की निरंतर कोशिश करनी चाहिए।

श्रम-नीति

किंतु विभिन्न औद्योगिक परियोजनाओं का सफल संचालन बड़ी हद तक ठोस श्रम-नीति पर निर्भर करेगा। अधिक उत्पादन तभी संभव होगा, जब मजदूर-संघों और उद्योग-संचालकों के संबंध मधुर रहें। इस दृष्टि से, गत पांच वर्षों से एक अनुशासन संहिता पर अमल किया जा रहा है। इसे मालिकों और मजदूरों के केंद्रीय संगठनों ने स्वेच्छा से स्वीकार किया था। आचार-संहिता प्रबंधकों और श्रमिकों के लिए निश्चित दायित्व निर्दिष्ट करती है। उसके अनुसार हड़तालों और मुकदमे-बाजी से बचना चाहिए और शिकायतों और विवादों का निपटारा

पारस्परिक संधिचर्चा, बीच-बचाव और स्वेच्छिक पंच-फैसले से करना चाहिए और इस प्रकार मालिकों और मजदूरों के प्रतिनिधियों में सभी स्तरों पर रचनात्मक सहयोग की स्थापना की जानी चाहिए।

जहां निजी और राजकीय दोनों क्षेत्रों में प्रबंधकों को मजदूर वर्ग का सहयोग हासिल करने की दृष्टि से अनुकूल वातावरण बनाने की अनिवार्य आवश्यकता पूरी तरह अनुभव करनी चाहिए, वहां मजदूर-संघों को भी अपने सदस्यों को यह कठोर आर्थिक सत्य समझाना चाहिए कि अधिक उत्पादन होने पर ही अधिक मजदूरी मिल सकेगी। मजदूरी और उत्पादन के मध्य यह महत्वपूर्ण संबंध जोड़े बिना देश में आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करना असंभव होगा। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में उचित अनुशासन उसी दशा में कायम रखा जा सकेगा जब मजदूर अपने अधिकारों के साथ-साथ उत्पादन का उच्च-स्तर कायम करने की बुनियादी जिम्मेदारियों को भी पूरी तरह अनुभव करेंगे। इसके लिए यह बिल्कुल जरूरी है कि व्यक्तिगत अथवा समूहगत बोनस दिये जायं और जहां संभव हो, काम के हिसाब से मजदूरी देने की प्रथा जारी की जाय।

जहांतक उद्योगों के प्रबंध में मजदूरों को शामिल करने का प्रश्न है, कुछ राजकीय उद्योगों ने प्रशासन के साथ मजदूर संघों को संबद्ध करने की दिशा में क़दम उठाये हैं। किंतु यह अनुभव करना होगा कि उद्योगों के प्रबंध के साथ श्रमिक वर्ग का संपर्क तभी यथार्थ और व्यावहारिक होगा जब मजदूरों का औद्योगिक ईकाई के हानि-लाभ में प्रत्यक्ष हिस्सा होगा। यदि उद्योग की पूंजी में धीरे-धीरे मजदूर वर्ग का भी हिस्सा हो तो जिम्मेदारी की यह भावना पैदा की जा सकती है। पहले क़दम के रूप में विशेष बोनस या वेतन वृद्धि की राशि स्थायी कर्मचारियों को कंपनी के साधारण शेयरों के रूप में दी जा सकती है। प्रारंभिक अवस्थाओं में प्राप्त अनुभवों के अनुसार मजदूरों द्वारा कंपनियों की शेयर पूंजी में हिस्सा लेने की क्रिया को धीमे-धीमे आगे बढ़ाया जा सकता है।

हाल के वर्षों में, ब्रिटेन और जर्मनी में उद्योग का स्वामित्व व्यक्तिगत

व्यवसायियों के पास से कंपनी के काम में भाग लेनेवाले सभी व्यक्तियों को सौंपने के कुछ प्रयोग किये गए हैं। एक प्रशंसनीय उदाहरण है स्काट बाडर एंड कंपनी का। यह इंग्लैंड की रासायनिक निर्माता-कंपनी है। इसने स्वामित्व की 'विविधतापूर्ण अनेकांतिक' कल्पना विकसित करने का प्रयास किया है और उसका उद्देश्य पूंजी संग्रह की क्रिया को सामाजिक रूप देना है। इन प्रयोगों की प्रगति को निश्चय ही हम सब दिलचस्पी से देखेंगे।

कभी-कभी यह सोचा जाता है कि उद्योगों को क्रमिक सहकारी रूप देने से कर्मचारियों की आर्थिक दशा अपने-आप सुधरेगी। यह ठीक खयाल नहीं है। अनेक सहकारी उद्योगों में भी प्रायः पूंजीपति-कारखानों के समान ही मजदूरों का शोषण होता रहता है। इसलिए यह जरूरी है कि सहकारी उद्योगों में भी मजदूरों को पूंजी और प्रबंध दोनों में साझेदार बनाना चाहिए, जैसा कि ब्रिटेन के मजदूर नेता फेनर ब्राकवे का कहना है, "किसी उद्योग में और उसकी आय में जब छोटे-से-छोटे मजदूर का न्यायोचित हिस्सा होगा, तभी उसे सहकारी उद्योग कहा जा सकेगा और वह समाजवादी नमूने का उद्योग होगा।"

निर्माण में किफायत

तीसरी योजना ने निर्माण में किफायत पर काफी जोर दिया है और इस लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए विस्तृत सुझाव दिये हैं। किंतु यह गहन चिंता का विषय है कि इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हुई है। कृषि, उद्योग परिवहन, संचार और सामाजिक सेवाओं के क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के निर्माणों पर कुल लागत का करीब ४० प्रतिशत खर्च होता है और इसलिए यह बहुत जरूरी है कि इमारतों, सड़कों, कारखानों, बांधों और अन्य परियोजनाओं के निर्माण-व्यय को कम करने के लिए विशेष कदम उठाये जायं।

गत दशाब्दि में देश में विकास-कार्यक्रमों के वेग ने ठेकेदारों के एक नये वर्ग को जन्म दिया है जिसने आर्थिक विषमताओं और आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण को कम करने के बजाय बढ़ाया ही है। योजना-आयोग

ने इसलिए सारे देश में बड़े पैमाने पर मजदूर सहकारी समितियां संगठित करने का आग्रह किया है। भारत सेवक समाज नाम-मात्र के मुनाफे पर विभिन्न निर्माण कार्यों में ठेका लेकर इस क्षेत्र में मूल्यवान सेवा करने की कोशिश कर रहा है। आशा है, विभिन्न स्तरों पर अमल करनेवाले संबंधित अधिकारियों का हमारे विकास-आयोजन के इस पहलू पर विशेष ध्यान जायगा।

सहकारी बिक्री और वितरण

व्यापार और वाणिज्य के संबंध में यह बार-बार दोहराया गया है कि सहकारी बिक्री और सहकारी वितरण पर कहीं अधिक जोर दिया जाय। आज की परिस्थितियों में बिचौलिये उत्पादन और उपभोग दोनों स्तरों पर आम लोगों को उन लाभों से वंचित करते हैं जो आयोजन की क्रिया में साधारणतया उन्हें मिलने चाहिए। बिचौलिया द्वारा आर्थिक शोषण के इन प्रकारों को खत्म करके और उनके स्थान पर सहकारी एजेंसियां कायम करके ही समाजवादी समाज की स्थापना की जा सकती है।

यह सोचा गया है कि तीसरी योजना के अंत तक सभी २५०० मंडियों में किसानों के आर्थिक हितों की रक्षा करने के लिए सुगठित क्रय-विक्रय सहकारी संगठन कायम हो जायंगे। आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में अवांछनीय वृद्धि से उपभोक्ताओं को बचाने के लिए सरकार एक लाख से अधिक आबादीवाले देश के सभी शहरों में २०० थोक-भंडार और ४००० प्राथमिक सहकारी भंडार कायम करने की योजना बना चुकी है। यह भी अनुमान किया गया है कि अगले दो वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों में करीब १ लाख प्राथमिक सहकारी और क्रय-विक्रय समितियां गांवों की जरूरतों को पूरा करने के लिए उपभोक्ता भंडार खोल देंगी।

दुर्भाग्यवश, भारत अनेक कारणों से सहकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त नहीं कर सका है। प्राथमिक सहकारी समितियों की काफी बड़ी संख्या मृतप्राय: अवस्था में चल रही है और उन्हें संजीवित करना होगा। क्रय-विक्रय संस्थाओं के पास रुपये और प्रशिक्षित

कर्मचारियों का अभाव है। कृषि-फसलों की कीमतों में होनेवाले उलट-फेर का सहकारी क्रय-विक्रय-कार्य की स्थिरता पर प्रतिकूल असर पड़ता है। किंतु हमें अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सहकारी आंदोलन को पूरे जोश और दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ाना चाहिए। मुख्यतः समाजवादी व्यवस्था के लिए व्यापक आधार तैयार करने के लिए कार्यकुशलता और ईमानदारी दोनों ही दृष्टियों से हमें इन्सानों को समृद्ध, प्रशिक्षित और विकसित करना होगा।

सबसे महत्वपूर्ण काम

भारत सरकार ने प्रशासन के संबंध में एक कमेटी नियुक्त की है और मंत्री-मंडल के सचिव उसके अध्यक्ष हैं। यह उच्च-स्तरीय कमेटी विलंब को टालने और विभिन्न विधियों को सरल बनाने के लिए विभिन्न समस्याओं पर विचार कर रही है। यह जरूरी है कि इस कमेटी को और भी सक्रिय बनाया जाय और वह सुरक्षा और विकास दोनों की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रशासन यंत्र को चुस्त बनाने का प्रभावशाली माध्यम बन जाय। संक्षेप में, केंद्रीय और राज्य सरकारों के सामने सबसे महत्वपूर्ण काम यह है कि सब स्तरों पर प्रशासन कार्य-कुशल और ईमानदार हो, ताकि आयोजन और अमल की खाई को, विशेषकर कृषि और उद्योग के क्षेत्र में, पाटा जा सके।

भारत सरकार ने प्रशासन के मानदंड को ऊंचा करने के लिए अनेक कदम उठाए हैं। सतर्कता-आयोग की नियुक्ति से आशा है, लोगों में प्रशासन की सामान्य ईमानदारी और कार्य-कुशलता के बारे में पहले से अधिक भरोसा पैदा होगा। अनेक राज्य सरकारों ने भी अनेक क़दम उठाए हैं, जिसके सन्तोषजनक परिणाम निकलेंगे। किंतु योजना-आयोग का यह कथन बिल्कुल सही है, कि "कार्य का उच्चस्तर कायम करने के लिए संगठित और सतत प्रयास किया जाय, कर्मचारियों को उत्तम प्रशिक्षण दिया जाय, प्रगति का व्यवस्थित वर्णन और मूल्यांकन किया जाय और प्रशासन संगठन में काम करनेवाली एजेंसियां पहले से अधिक जिम्मेदारी और स्वयं प्रेरणा का परिचय दें।"

९

उपसंहार

पिछले अध्यायों में जनसाधारण को पहले से अधिक सामाजिक और आर्थिक लाभ सुलभ करने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जो विभिन्न कदम उठाये गए हैं, उन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि अनेक दिशाओं में उत्साहवर्द्धक परिणाम आये हैं, किंतु आनेवाले वर्षों में अभी काफी मंजिल तय करनी होगी। निरुत्साह तथा निराश होने का कोई कारण नहीं है। साथ ही हम थककर भी नहीं बैठ सकते। सच्चा समाजवाद छोटे अथवा सरल रास्तों पर चलकर कायम नहीं किया जा सकता। नेहरूजी ने हमें बार-बार याद दिलाया था कि भारत लंबे समय तक कठिन और ठोस परिश्रम करके ही समाजवाद के लक्ष्य की ओर आगे बढ़ सकता है। पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों प्रकार के देशों में केवल कठोर परिश्रम, त्याग और कार्य-कुशलता से ही उल्लेखनीय परिणाम हासिल हुए हैं। कोई राष्ट्र आर्थिक चमत्कारों द्वारा प्रगति और समृद्धि के शिखर पर पहुंचने की आशा नहीं कर सकता।

धर्म की कल्पना

सबसे बड़ी बात यह कि भारत में समाजवाद की स्थापना मनुष्यों को धर्म की प्राचीन कल्पना की ओर मोड़कर ही करनी होगी। दूसरे शब्दों में लोगों में यह भावना पैदा करनी होगी कि उन्हें निष्ठा और उत्साह के साथ समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना है। श्री मैक्लेलैंड आधुनिक अर्थशास्त्रियों को यह समझाना चाहते हैं कि "आर्थिक विकास के मूल में कार्य करनेवाली सर्वोपरि शक्तियां यदि बिल्कुल ठीक-ठीक कहना हो तो आर्थिक क्षेत्र से बाहर हैं।" ये गैर-

आर्थिक शक्तियां मानव विकास के उन पहलुओं को प्रभावित करती हैं जो सबके हित अर्थात् सर्वोदय के लिए कार्य-कुशलता, ईमानदारी, सचाई और पारस्परिक सहयोग से संबंध रखते हैं। श्री क्रासलैंड ठीक ही कहते हैं, "हम केवल समृद्धि के उस युग में प्रवेश करना नहीं चाहते, केवल यह पाने के लिए कि हमने उन मूल्यों को गंवा दिया है जो हमें उस समृद्धि का कैसे उपयोग किया जाय, यह सिखाते हैं।" हम समाजवादी समाज की भाषा में सचाई के साथ चर्चा करें, उसके पहले हमें आयोजन के इस नैतिक तत्व का अत्यंत सावधानी और चिंतापूर्वक विकास करना चाहिए। आयोजित आर्थिक विकास में "वस्तुओं की प्रचुरता की अपेक्षा जीवन-गुणों पर जोर देना" बहुत जरूरी है।

सामाजिक और आर्थिक अनुशासन

गत दशाब्दि के अनुभव से यह पता चला है कि एक राष्ट्र के रूप में भारत के पास उस बुनियादी सामाजिक और आर्थिक अनुशासन का अभाव-सा है जो हमारी योजनाओं की सफलता के लिए जरूरी है। जापान अभूतपूर्व प्रगति करने में सफल हुआ है। उसके वार्षिक विकास की रफ्तार १५ प्रतिशत तक पहुंची है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह राष्ट्रीय आर्थिक अनुशासन का उच्च मानदंड कायम कर पाया है। जापान की सरकार ने अगले दस वर्षों में अपने सामने राष्ट्रीय आय को दुगुना करने का लक्ष्य रखा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के विकास-कार्यक्रम पर अमल करेगी और बड़ी संख्या में छात्रवृत्तियां देगी, ताकि आनेवाली युवा-पीढ़ी राष्ट्र की कुशलता और निष्ठा के साथ सेवा कर सके। निश्चय ही यह आश्चर्य-जनक बात है कि जापानी समाज 'पराजय और तबाही के कठिन वर्षों में' एक-सूत्रता कैसे कायम रख सका। निश्चय ही जापानी लोगों की स्वाभाविक शक्ति और स्फूर्ति इसके मूल में है, जिसका उन्होंने गत दशाब्दि में विकास किया है।

संगठनगत परिवर्तन

अंतिम निष्कर्ष यह है कि आर्थिक अनुशासन तभी विकसित हो

सकता है जब वर्तमान संगठनों को सामाजिक परिवर्तन का शक्तिशाली माध्यम बना दिया जाय। उदाहरण के लिए, देश में सहकारी और पंचायत-संगठन उस समय समाजवादी व्यवस्था के दो स्तंभ नहीं बन सकते, जबतक कि वे शक्तिशाली रूप में लोगों की समाजवादी आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे। यह स्पष्ट है कि मानवी संगठनों का यह रूपान्तर होने में काफी समय लगेगा। फिर भी यदि हम समाज के बुनियादी आचरण को बदलने के लिए शक्तिशाली कदम उठाने का इरादा कर लें तो हम काफी जल्दी परिणाम हासिल करने की आशा कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, *आर्थिक न्याय, सहकारी प्रयास और त्याग* की भावना पर आधारित सुदृढ़ सामाजिक कार्य द्वारा समाज-व्यवस्था में परिवर्तन ला सकते हैं। यह मानना नितान्त भ्रामक होगा कि 'निजी आर्थिक शक्ति पर नियंत्रण कर लेने से अपने-आप स्वतंत्र और सुखी मानव-समाज की स्थापना हो जायगी।'

भारत का यह सौभाग्य है कि उसे गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जवाहरलाल नेहरू और विनोबा जैसे महापुरुषों का प्रेरक पथ-प्रदर्शन प्राप्त हुआ। वर्तमान संकट ने राष्ट्रीय-निष्ठा और उत्साह को फिर से जगाने में सहायता दी है और हमें भरोसा है कि लोग अवसर के अनुकूल ऊंचे उठेंगे और महान् नेताओं द्वारा स्थापित उच्च और महान् परंपराओं के योग्य सिद्ध होंगे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भारत की सफलताएं अनुकरणीय रही हैं और भविष्य के गर्भ में और भी बड़ी समानताओं की आशा छिपी है।

राष्ट्रीय सुरक्षा और समाजवाद

इस समय जब भारत को अपने दो सिद्धांतहीन पड़ोसियों के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए अपनी सुरक्षा-शक्ति बनाने का कठिन काम करना पड़ रहा है, कोई यह सोच सकता है कि अब समाजवादी आदर्श के अनुरूप देश के आर्थिक जीवन की योजना बनाना संभव नहीं रह गया है। हमारे बुद्धि-जीवियों में एक ऐसा वर्ग है जो कहता है कि हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में समाविष्ट औद्योगिक-नीति संबंधी प्रस्ताव

को अब अलविदा कहना चाहिए और औद्योगिक तथा सुरक्षा-उत्पादन के लिए निजी क्षेत्र के साधनों को विकसित करने की हर मुमकिन कोशिश करनी चाहिए। यह कानाफूसी भी है कि भारत जैसे गरीब देश के लिए, विशेषकर युद्ध-काल में समाजवाद का लक्ष्य एक प्रकार का शौक होगा। ये अभिमत आधुनिक-युद्धों, आर्थिक आयोजन और समाजवाद के बारे में सर्वथा भ्रामक खयालों पर आधारित हैं।

आधुनिक जमाने में, युद्ध केवल मोर्चों पर ही नहीं लड़े जाते, खेत में काम करनेवाले किसानों और कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों को मोर्चों पर लड़नेवाले सैनिकों की सक्रिय मदद करनी पड़ती है। नेहरूजी ने कहा था कि इस संकट की घड़ी में हर किसान और मजदूर को अपने-आपको राष्ट्र के जीवन-मरण के संग्राम का सैनिक समझना चाहिए। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का एक बुनियादी लक्ष्य यह है कि कृषि और उद्योगों का उत्पादन तेज रफ्तार से बढ़ाया जाय। स्थूल राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए ही नहीं, बल्कि अर्थ-व्यवस्था के त्वरित विकास की मजबूत नींव डालने के लिए भी ऐसा करना जरूरी है। ऐसी समाजवादी व्यवस्था के विकास में जहां निजी क्षेत्र को महत्वपूर्ण योग देना होगा, वहां जाहिर है कि राजकीय क्षेत्र का नियोजित तरीके से विस्तार होना चाहिए। उसे भारी उद्योगों की स्थापना करनी होगी और ये उद्योग विविध प्रकार के बड़े, मध्यम और लघु उद्योगों के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करेंगे। इसलिए वर्तमान कठिनाइयों के दबाव के आगे राजकीय क्षेत्र में ऐसे बुनियादी उद्योगों के विकास की गति को मंद करना अदूरदर्शितापूर्ण और आत्मघातक भी होगा। यह संकटकाल काफी लंबे समयतक रहेगा। फलस्वरूप, यह जरूरी है कि राजकीय औद्योगिक क्षेत्र को कमजोर और संकुचित करने के बजाय मजबूत और विस्तृत बनाया जाय। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि अगर औद्योगिक-नीति-प्रस्ताव में संशोधन करना ही हो तो यह होना चाहिए कि इस समय जो क्षेत्र अभी निजी उद्योगों के लिए सुरक्षित हैं, उनमें भी राजकीय क्षेत्र को दाखिल करने पर पहले से अधिक जोर दिया जाय। इसके अलावा, विकेंद्रित सहकारी क्षेत्र को उपभोक्ता उद्योग

कायम करने के लिए अधिक सुविधाएं दी जानी चाहिए।

विनोबाजी ने अपने एक भाषण में कहा है कि आधुनिक युद्ध तीन मोर्चों पर लड़े जाते है—एक लड़ाई का मोर्चा, दूसरा घरेलू मोर्चा और तीसरे आदर्शों का मोर्चा होता है। यद्यपि सीमाओं पर रक्षा-सेनाओं को मजबूत बनाना बहुत जरूरी होता है और घरेलू मोर्चों पर उत्पादन बढ़ाना भी सर्वोपरि महत्व रखता है, किंतु राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को आदर्श का जामा पहनाना भी बहुत जरूरी है। समाजवादी समाज का बुनियादी लक्ष्य लोगों की सामाजिक और आर्थिक विषमताएं कम करना है। इसलिए, यह जरूरी है कि हम न केवल विदेशी आक्रमण को विफल करें, बल्कि सामाजिक और आर्थिक मोर्चों पर शांति को भी जीतें। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में आम जनता के मनोबल को भली प्रकार तभी कायम रखा जा सकेगा जब सामाजिक और आर्थिक न्याय और समानता के आधार पर नये भारत के निर्माण के महान् प्रयास में उसे सक्रिय साझीदार बनाया जायगा। प्रोफेसर टिटमस कहते हैं कि युद्ध को सफलतापूर्वक चलाने के काम में जन-सहयोग प्राप्त करने के लिए "विषमताओं को कम किया जाय और सामाजिक विषमताओं के आधार पर निर्मित भवन को भूमिसात किया जाय।" संसद को संबोधित करते हुए राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् ने राष्ट्र से साग्रह अनुरोध किया है कि हमें लोकतंत्री और समाजवादी व्यवस्था के लक्ष्य की ओर अपनी यात्रा को मंद न करते हुए विदेशी आक्रमण का सामना करना चाहिए। कांग्रेस के 'लोकतंत्र और समाजवाद' विषयक प्रस्ताव में जोरों से कहा गया है, "यह बहुत जरूरी है कि हर व्यक्ति की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने का प्रबंध किया जाय और एक न्यूनतम राष्ट्रीय स्तर यथा-संभव शीघ्र कायम किया जाय। उसमें खाना, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी आवश्यक जरूरतों का समावेश होना चाहिए।"

तीसरी योजना में ऐसी अनेक योजनाएं हैं, जिनका उद्देश्य हमारी आबादी के अपेक्षाकृत गरीब और सुविधाहीन वर्गों के जीवन-मान को उन्नत करना है। खेतिहर मजदूरों की आर्थिक दशा को कई लाख एकड़ भूमि को बांट कर और ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देकर सुधारना होगा।

देहातों में बेकारी और अर्द्ध-बेकारी की समस्या को ग्राम-निर्माण कार्यों के साहसिक कार्यक्रम को हाथ में लेकर हल करना होगा, भले ही ऐसा आंशिक रूप में किया जा सके। शहरी क्षेत्रों में गंदी बस्तियों में रहनेवालों और मजदूरों की आर्थिक अवस्था विधायक तरीके से सुधारनी होगी। गांवों की अर्थ-व्यवस्था में विविधता लाने के लिए ग्राम-उद्योगों का जाल बिछाना होगा। सुपात्र किंतु गरीब विद्यार्थियों को बड़ी संख्या में छात्रवृत्तियां दी जा रही हैं, विशेषकर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा पाने के लिए सहकारी आंदोलन को न केवल कृषि-क्षेत्र में, बल्कि उद्योग, व्यापार-वाणिज्य, मकान और परिवहन के क्षेत्र में भी फैलाना होगा, ताकि छोटे किसानों और मजदूरों का बिचौलिये शोषण न कर सकें। ये सारे कार्यक्रम मंद करने या संकुचित करने के बजाय और भी जोरों से चलाने चाहिए, जिससे समाज के दुर्बल अंगों को समान अवसर मिल सके। संपत्ति के कुछ ही हाथों में संचय को करों और अन्य लोकतंत्रीय तरीकों द्वारा अधिक प्रभावशाली रूप से रोकना होगा। यदि हम श्रेष्ठतर सामाजिक और आर्थिक न्याय की परिस्थितियां पैदा कर जन-साधारण का मनोबल कायम नहीं रखेंगे और सैनिक तैयारियां करते रहेंगे तो हम अपनी राष्ट्रीय रक्षा-व्यवस्था की मजबूत नींव नहीं डाल पायंगे। अतः लोकतंत्रीय तरीकों से भारत में समाजवाद की गति को तेज करने के लिए हमें वर्तमान संकट का पूरा फायदा उठाना चाहिए। संसद को संबोधित करते हुए नेहरूजी ने कहा था, "लोकतंत्री क्षेत्र में, देश को पूरी ताकत के साथ समाजवादी व्यवस्था की ओर बढ़ना चाहिए और राष्ट्र की शक्ति का उपयोग उत्पादक प्रयत्नों में करना चाहिए। चीनी आक्रमण का लोगों ने जिस शानदार ढंग से उत्तर दिया है, उसे देखते हुए हमारे लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम न्याय करें और उन्हें सामाजिक न्याय प्रदान करें।"

सन् १९६४-६५ के भारतीय बजट में ऐसे अनेक प्रस्ताव हैं जो देश को सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्राप्ति की दिशा में एक मंजिल और आगे बढ़ायंगे। व्यक्तिगत आय-कर की दरों में ऐसा संशोधन किया गया है कि थोड़ी आयवाली श्रेणियों पर कर-भार कम होगा। संपत्ति-

कर और उपहार-कर की दरों को पूर्णतया बदल दिया गया है; अधिकतम दर अब २ लाख से अधिक मूल्य की संपत्तियों पर ८५ प्रतिशत तक पहुंचेगी। प्रदर्शनात्मक उपभोग पर अंकुश लगाने के लिए उपहार-कर फिर से लगाया गया है। सरकार ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था में एकाधिकारों और आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण की जांच-पड़ताल करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया है। योजना आयोग द्वारा नियुक्त आय-वितरण कमेटी वर्तमान तथ्यों के आधार पर निश्चित परिणामों पर नहीं पहुंच पाई है, इसलिए उपरोक्त एकाधिकार-जांच-आयोग की रिपोर्ट आर्थिक और औद्योगिक गठन के उन पहलुओं पर प्रकाश डाल सकेगी, जिनमें जल्दी संशोधन करने की आवश्यकता है।

समाजवाद का भारतीय रूप

अंत में, मैं यह दोहराना चाहता हूं कि भारतीय आयोजन में जिस प्रकार के समाजवादी समाज की कल्पना की गई है, वह पश्चिम के लोकतंत्री देशों अथवा साम्यवादी देशों में विद्यमान किसी खास किस्म के समाजवाद की यथावत या अंधी नकल नहीं है। डॉ० एरहर्ड ने कहा है, "भारत का सामाजिक और आर्थिक विकास किसी अन्य देश के नमूने पर नहीं किया जा सकता, क्योंकि, स्वयं इस देश और उसके लोगों की रचनात्मक शक्ति ही उसके विकास का मार्ग निर्धारित कर सकती है।" जैसा कि पहले बताया जा चुका है, भारतीय समाजवाद ने अन्य देशों की सामाजिक और आर्थिक प्रगति की अच्छी बातों को पचाने की कोशिश की है। फिर भी उसकी जड़ें अपनी ही धरती में हैं और वह देश की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत से प्रेरणा लेता है। हमारे आर्थिक विकास के भारतीय रूप पर जोर देते हुए नेहरूजी ने संविधान सभा को कहा था, "मैं किसी बात को रद्द नहीं करता, किंतु मैं भारत से विलग होने की बात को जरूर रद्द करता हूं, मैं नहीं चाहता कि भारत उष्ण कमरे का पौधा बने, जो उस कमरे में तो सुंदर प्रतीत हो, किंतु जिसकी जड़ें देश में कहीं न हों।"

तीसरी योजना में हमारी सभ्यता और संस्कृति के 'कुछ विशिष्ट लक्ष्यों' का जिक्र किया गया है, जो वास्तव में "नैतिक मूल्यों का एक

समूह ही है । इन मूल्यों ने भारतीय जीवन को सदियों प्रभावित किया है, भले ही लोग उन पर चल न पाये हों ।" ये मूल्य भारतीय चिंतन के अंग हैं । जब हम वैज्ञानिक और तकनीकी सभ्यता के प्रभाव पर विचार करते हैं, तब भी उन मूल्यों का अधिकाधिक महत्व स्पष्ट होता है । तीसरी योजना में कहा गया है, "आधुनिक दुनिया में शायद ही ऐसा कोई देश हो, जिसने गांधी जैसा व्यक्ति पैदा किया हो । रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी किसी ने पैदा नहीं किया, जिनका जीवन की समस्याओं के प्रति विशिष्ट आधुनिक दृष्टिकोण था, किंतु जो साथ ही भारत की पुरानी संस्कृति और चिंतन के भी गहन अभ्यासी थे । इस प्रकार उनका संदेश दोनों के मध्य समन्वय का संदेश है ।"

भारत के आयोजित आर्थिक विकास में जिस समाजवाद की कल्पना की गई है उसका विशिष्ट रूप यह है कि वह नये और पुराने, विज्ञान और आध्यात्मिकता, भौत्तिक प्रगति और नैतिक पुनरुत्थान के मध्य समन्वय करता है । जहां देश के करोड़ों लोगों के लिए न्यूनतम जीवन-मान हासिल करना जरूरी है, वहां कतिपय गैर आर्थिक और आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाना भी उतना ही जरूरी है, जिसके बिना आर्थिक प्रगति शुद्ध भौतिक अर्थ में भ्रामक और सारहीन होगी । 'लोकतंत्र और समाजवाद' विषयक कांग्रेस-प्रस्ताव कहता है, "केवल भौतिक समृद्धि ही मानव जीवन को समृद्ध और सार्थक नहीं बनायगी ।" भारतीय समाजवाद की मुख्य विशेषताओं का मूल्यांकन करने के लिए दो बातों को उचित महत्व और मान्यता देना चाहिए । एक तो यह कि वह उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अहिंसा और साधनों की शुद्धि पर जोर देता है। दूसरे, उसके अंतर्गत आर्थिक और राजनीतिक सत्ता को बड़े पैमाने पर विकेंद्रित करने का व्यवस्थित प्रयत्न किया जा रहा है । सबसे बड़ी बात यह है कि भारत में समाज ने उस सत्य से अमर प्रेरणा प्राप्त की है और सदियों करता रहेगा, जिसकी ऋषियों ने महाभारत में अटूट श्रद्धा से घोषणा की है :

"असत्याचरण से मनुष्य फलता-फूलता है, इच्छित लाभों को प्राप्त करता है, शत्रुओं को पराजित करता है, किंतु आत्मा का हनन करता है।"

परिशिष्ठ—क

बुनियादी दृष्टिकोण

(श्री जवाहरलाल नेहरू)

हमारे सामने काफी तादाद में घरेलू सवाल हैं। वे सवाल काफी नाजुक हैं। उनका हमें सामना करना है। लेकिन जब हम उन घरेलू सवालों पर जरा भी गौर करेंगे, तो हमें काफी दूर तक सोचना पड़ेगा। जबतक हम अपने आपमें उन सवालों की तरह स्पष्ट नहीं होंगे, और हममें दृष्टिकोण की स्पष्टता नहीं होगी, हमारा भ्रम दूर न होगा, जिसने दुनिया को दूषित कर रखा है। मैं नहीं कहता कि मुझ में विचारों की वह स्पष्टता, और इन बड़े-बड़े सवालों के जवाब मौजूद हैं। विनम्र भाव से मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि मैं इन सवालों पर लगातार सोचता जरूर रहता हूं। एक तरह से मुझे उन लोगों से ईर्ष्या भी होती है, जिनके अपने निश्चित विचार हैं और जो मौजूदा समस्याओं की गहराई में जाकर विचार करने की जहमत नहीं उठाते। चाहे वह मजहब की वजह से हो, या विचारधारा की वजह से, वे उन दिमागी संघर्षों से क़तई प्रभावित नहीं होते, जो बड़ी-बड़ी तब्दीलियों के जमाने में हमेशा होते रहते हैं।

यह सही है कि कुछ निश्चित खयाल या संतोष रखना काफी आराम-देह है, लेकिन यह न कोई अच्छी बात है, और न उसकी तारीफ ही की जा सकती है। उससे सिर्फ स्थिरता और लगातार पतन ही पैदा होगा। आज की बुनियादी बात यह है कि इन्सान की जिंदगी में एक बड़ी तब्दीली हुई है। खुद अपनी जिंदगी में ही मैंने अजीब-अजीब तब्दीलियां देखी हैं, और मुझे पूरी उम्मीद है कि अगली पीढ़ी की जिंदगी में तब्दीलियां इससे भी बड़ी होंगी, बशर्ते कि इन्सानियत आणविक जंग से पीड़ित या प्रताड़ित नहीं हुई।

भौतिक दुनिया पर इन्सान के दिमाग की लगातार फतह या उसके

बारे में उसकी पैंठ से बढ़कर आज के जमाने में कोई दूसरी उल्लेखनीय चीज नहीं और यह क्रम भयानक गति से लगातार जारी है। अब आदमी को काफी हद तक बाहरी माहौल का शिकार होने की जरूरत नहीं रह गई है, हालांकि बाहरी कुदरती हालात पर इतनी फतह हासिल कर ली गई है; लेकिन, उसके साथ-ही-साथ, इन्सान में समूचे रूप में अपने-आप पर काबू पाने और नैतिक तंतुओं की कमी का एक अजीब नजारा दरपेश है। भौतिक दुनिया पर फतह हासिल करते हुए भी वह खुद अपने-आप पर फतह पाने में नाकामयाब रहा है।

इस आणविक और अंतरिक्ष युग का यही दुखद विरोधाभास है। अणु-परीक्षण लगातार जारी हैं, हालांकि यह अच्छी तरह से मान लिया गया है कि मौजूदा जमाने में और भविष्य के लिए भी यह बहुत ही नुकसानदेह है। हर तरह के सर्वनाशक हथियारों का बनाना और संग्रह करना जारी है, हालांकि दुनिया भर में यह मान लिया गया है कि उनके इस्तेमाल से मानव-जाति का पूरा विनाश हो सकता है। यही बातें साफ-साफ इस विरोधाभास को सामने ला देती हैं। विज्ञान इतनी तेजी से आगे बढ़ रहा है कि उसे अधिकांश मानव-जाति समझ ही नहीं सकती और वह ऐसे मसले पैदा कर रहा है कि जिन्हें हल करने की बात तो अलग रही, हम समझने में भी असमर्थ हैं। हमारे जमाने की अंदरूनी कशमकश और शोर-शरावे की बुनियाद यही है। एक ओर तो विज्ञान और तकनीक शास्त्र की इतनी ज्यादा और बेकाबू कर देनेवाली तरक्की और उनके बेइंतहा नतीजे हैं, और दूसरी ओर खुद तहजीब की कुछ दिमागी थकान है।

मजहब विवेक और अक्लमंदी से टकरा रहा है। मजहबी अनुशासन और सामाजिक रिवाज मिटते जारहे हैं, लेकिन उनकी जगह नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन कायम नही हो सका है। व्यवहार में मजहब का संबंध ऐसे मामलों से है, जिनका हमारी आज की जिंदगी से कोई ताल्लुक नही है। और इस तरह वह एक ऐसा नजरिया अख्तियार कर रहा है, जो हाथी-दांत जैसा सिर्फ दिखावटी ही है या उसका ताल्लुक कुछ ऐसे सामाजिक रिवाजों से है, जो हमारे मौजूदा जमाने से मेल नहीं

खाते। दूसरी ओर विवेक अपने सभी गुणों के बावजूद, किसी तरह ऊपर से ही मसलों को हल करता हुआ मालूम होता है, और अंदरूनी जड़ों को खोलकर सामने लाने में नाकामयाब है। खुद विज्ञान भी एक ऐसी हालत में पहुंच गया है, जहां नई-नई संभावनाएं और रहस्य सामने आ गये हैं। लगता है, जैसे पदार्थ-शक्ति और आत्मा एक दूसरे के क्षेत्र में दखल दे रहे हैं।

पुराने जमाने में जिंदगी ज्यादा सीधी-सादी और प्रकृति के ज्यादा करीब थी। अब यह बराबर इतनी ज्यादा पेचीदा और तेज रफ्तार हो रही है कि मुड़कर एक बार सोचने या सवाल करने का भी मौका नहीं रह गया है। वैज्ञानिक विकासों ने जरूरत से इतनी ज्यादा शक्ति और ताकत पैदा कर दी है कि उसका इस्तेमाल गलत कामों के लिए होने लगा है।

जिस सवाल ने युगों पहले मानव-जाति को परेशान कर रखा था, वह आज भी हमारे सामने है। वह सवाल यह है कि इस जिंदगी के माने क्या हैं? अगर मजहब और आस्था के पुराने दिन आज के सवालों को हल नहीं कर सकते, या उनका जवाब नहीं दे पाते तो वे हमारे लिए नाकाफी हैं। एक तब्दील होती हुई दुनिया में इन तब्दीलियों और वाकयात के मुताबिक जिंदगी में भी लगातार रद्दो-बदल होने चाहिये। इस तरह के मेल-मिलाप की कमी की वजह से भी कशमकश और झगड़े पैदा होते हैं।

जाहिर है, पुरानी तहजीबें आज दुनिया के लिए नाकाफी साबित हो रही हैं, हालांकि उनमें काफी गुण मौजूद हैं। अपनी तमाम सफलताओं और अपने अणुबम के बावजूद नई पश्चिमी तहजीब जरूरत के मुताबिक काफी नहीं मालूम होती। इसलिए यह सवाल पैदा होता जारहा है कि हमारी तहजीब में ही कोई कमी है। दरअसल, हमारे सभी मसले तहजीब के ही मसले हैं। मजहब ने कुछ नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन दिया। साथ ही उसने सामाजिक रीति-रिवाजों और दकियानूसी अंधविश्वासों को कायम रखने की भी कोशिश की। दरअसल, उन अंधविश्वासों और सामाजिक रिवाजों ने मजहब की असली

भावना को पराजित कर दिया और धर्म के प्रति लोगों की श्रद्धा हटी । धर्म के प्रति आस्था कमजोर हुई तो साम्यवाद का आगमन हुआ और उसने इन्सान में एक किस्म की आस्था और कुछ अनुशासन पैदा किया । कुछ हदतक उसने एक खाली जगह भरी । एक हदतक उसने इन्सान की जिंदगी में कुछ उद्देश्य पैदा किया । लेकिन अपनी ऊपरी कामयाबी के बावजूद, यह नाकामयाब रहा—कुछ अपनी कड़ाई की वजह से, लेकिन ज्यादातर इसलिए कि वह इन्सान के स्वभाव की बुनियादी जरूरतों की उपेक्षा करता है । साम्यवाद की विचारधारा में पूंजीवादी समाज के विरोधाभासों की चर्चा है, और इस विश्लेषण में काफी कुछ सचाई भी है । लेकिन हैरत की बात तो यह है कि हमें साम्यवाद के कठोर ढांचे के भीतर भी विरोधाभसा बढ़ते हुए नजर आरहे हैं । उसमें व्यक्तिगत आजादी को दबाया जाता है, जिससे जबर-दस्त प्रतिकियाएं पैदा होती हैं । उसमें न सिर्फ जिंदगी के नैतिक और आध्यात्मिक पहलुओं की उपेक्षा की जाती है, जो कि इन्सान की जिंदगी के लिए बुनियादी बातें हैं, बल्कि वह मानवीय व्यवहार के लिए कोई मानदंड और मूल्य भी निर्धारित नहीं करता । दुर्भाग्यवश, उसका हिंसा के साथ रिश्ता है, जिससे मानव-प्राणियों में कुछ बुरी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है ।

मैं सोवियत संघ की कई कामयाबियों की तारीफ करता हूं । उन बड़ी कामयाबियों में एक यह है कि वहां बच्चों और जनसाधारण को काफी महत्व दिया जाता है । उनकी तालीम और स्वास्थ्य की प्रणाली शायद दुनिया में सबसे अच्छी है । लेकिन यह कहा जाता है, और ठीक कहा जाता है, कि वहां व्यक्ति की आजादी को दबाया जाता है, लेकिन फिर भी, यह मानना पड़ेगा कि खुद तालीम का प्रसार अपने सभी रूपों में आजादी देनेवाली एक जबरदस्त ताकत है, और जाहिर है कि आखिर में चलकर यह ताकत आजादी का दमन नहीं सहेगी । साम्यवादी प्रणाली का यह एक दूसरा विरोधाभास है । दुर्भाग्यवश, साम्यवाद हिंसा की आवश्यकता से बंध गया है । इस वजह से उसने दुनिया के सामने जो आदर्श रखा, वह दोषपूर्ण हो गया । साधनों ने लक्ष्यों को खराब कर

दिया। हमारे सामने गलत साधनों और तरीकों के असर का यह स्पष्ट सबूत है।

साम्यवाद पूंजीवादी समाज पर आरोप लगाता है कि वह हिंसा और वर्ग-संघर्ष पर आधारित है। मेरा खयाल है कि यह बुनियादी तौर पर सही है, हालांकि यह पूंजीवादी ढांचा भी लोकतंत्रीय और दूसरी ताकतों की वजह से तब्दील हो चुका है, और लगातार तब्दील होता जारहा है। फिर भी यह सच है कि उसमें वर्गसंघर्ष और असमानताएं पाई जाती हैं। सवाल यह है कि इससे कैसे छुटकारा पाया जाय और कैसे एक वर्गहीन समाज बनाया जाय, जिसमें सभी को बराबर मौके हासिल हों। क्या यह मकसद हिंसा के तरीकों से हासिल होगा, या ये तब्दीलियां शांतिपूर्ण तरीकों के जरिये मुमकिन हो सकती हैं? इसमें शक की तनिक भी गुंजाइश नहीं है कि साम्यवाद और हिंसा के नजरिये में मजबूत गठजोड़ है। अगर आम तौर पर वह शारीरिक हिंसा नहीं करता तो भी कम-से-कम उसकी जबान तो हिंसा की है ही। उसके विचार हिंसक हैं। उसे समझा-बुझाकर, राजी करके, या अमन के लोकतंत्रीय तरीकों के जरिये तब्दीली लाने में विश्वास नहीं है, बल्कि वह दबा-धमका कर, विनाश करके तब्दीली लाने में यकीन करता है। फासिस्टवाद भी भद्दे-से-भद्दे किस्म के हिंसा और घृणा के तरीकों, और उनके सभी बुरे पहलुओं में विश्वास करता है। लेकिन, साथ-ही-साथ उसका कोई आदर्श नहीं है कि जिसे स्वीकार किया जा सके।

गांधीजी ने हमें जो अमन का दृष्टिकोण दिया है, उसके यह एकदम खिलाफ है। कम्युनिस्ट और कम्युनिस्ट-विरोधी, दोनों ही यह सोचते हैं कि किसी सिद्धांत का मजबूती से तभी बचाव किया जा सकता है जब हिंसा की भाषा का प्रयोग किया जाय या उन लोगों को बुरा-भला कहा जाय जो उस सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। इन दोनों तरह के लोगों के लिए कोई रंग नहीं है, सिर्फ काला और सफेद रंग है। दरअसल, यह वही नजरिया है, जो कुछ मजहबों के कट्टर पहलुओं में पहले पाया जाता था। यह सहनशीलता का नजरिया नहीं है। वह यह नहीं सोचता कि शायद दूसरे लोग भी कुछ सच कहते हैं। जहांतक

मेरा ताल्लुक है, मुझे यह नजरिया एकदम अवैज्ञानिक, अनुचित और असभ्य मालूम होता है, चाहे उसे मजहब के या आर्थिक सिद्धांत के या किसी और चीज के क्षेत्र में लागू किया जाय। मैं सहनशीलता के पुराने सीधे-सादे नजरिये को, इसके मजहबी पहलू को छोड़कर, तरजीह देता हूं। लेकिन, इसके बारे में चाहे हमारे खयाल जो भी हों, हम आज की दुनिया में एक ऐसे स्थल पर पहुंच गये हैं, जहां जनता के बड़े वर्ग पर जबर्दस्ती विचार लादने की कोशिश आखिर में नाकामयाब होकर ही रहेगी। इससे आज के हालात में लड़ाई और बेइंतहा बरबादी होगी। किसी के लिए भी जीत या फतह नहीं होगी; हर आदमी के लिए हार-ही-हार होगी। हमने पिछले दो-एक वर्षों में भी यह देखा है कि बड़ी-बड़ी ताकतों के लिए भी अब उन क्षेत्रों पर औपनिवेशिक नियंत्रण लागू करना आसान नहीं रह गया है, जिन्होंने अभी हाल में आजादी हासिल कर ली है। १९५६ में स्वेज की घटना ने इसे साबित कर दिया है। फिर हंगरी में जो कुछ हुआ उसने भी साफ-साफ दिखला दिया कि राष्ट्रीय आजादी की इच्छा किसी भी विचारधारा से ज्यादा मजबूत है, और आखिर में इसे दबाना बिल्कुल नामुमकिन है। हंगरी में जो कुछ हुआ, साम्यवाद या साम्यवाद-विरोधी शक्तियों के बीच संघर्ष न था। बुनियादी तौर पर वह राष्ट्रवाद का द्योतक था, जो विदेशी नियंत्रण से आजाद होने की कोशिश कर रहा था।

इस प्रकार आज हिंसा से किसी बड़े सवाल को हल कर लेना कतई मुमकिन नहीं है, क्योंकि हिंसा बेहद भयानक और विनाशक हो गई है। इस सवाल के नैतिक पहलू को अब व्यावहारिक पहलू ने और भी बल दिया है।

अगर हमारे स्वप्नों का समाज बड़ी हिंसा से स्थापित नहीं हो सकता, तो क्या छोटे पैमाने की हिंसा से काम चल सकेगा ? हर्गिज नहीं—कुछ तो इसलिए कि उससे खुद बड़े पैमाने की हिंसा का जन्म होगा और कुछ इसलिए कि वह संघर्ष और तोड़फोड़ का माहौल पैदा करती है। यह सोचना गलत है कि संघर्ष से समाज की प्रगतिशील ताकतें जरूर कामयाब होंगी। जर्मनी में हिटलर ने कम्युनिस्ट पार्टी

और सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी, दोनों को ही, उखाड़ फेंका था। यही बात दूसरे मुल्कों में भी हो सकती है। और भारत में तो हिंसा की बात करना खास तौर पर खतरनाक है, क्योंकि इसमें बुनियादी तौर पर विनाशक भावनाएं छिपी हुई हैं। हम लोगों में अलगाव और फूट पैदा करनेवाली इतनी ज्यादा प्रवृत्तियां काम कर रही हैं कि अब हम और ज्यादा जोखिम उठाने के लिए तैयार नहीं। लेकिन यह सभी तुलनात्मक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण पहलू हैं। यकीनन बुनियादी बात यह है कि गलत साधनों से कभी भी सही नतीजे हासिल नहीं हो सकते; और यह कोई मजहबी सिद्धांत नहीं है, बल्कि एक व्यावहारिक धारणा है।

हम में से कुछ लोग इस सामान्य पृष्ठभूमि पर, और खासतौर पर भारत के हालात पर विचार करते रहे हैं। अक्सर यह कहा गया है कि भारत में एक तरह की निराशा और नाउम्मेदी की भावना फैली हुई है और कहीं भी पुराना जोश-खरोश दिखाई नहीं पड़ता, जबकि हमारे लिए उत्साह और मेहनत करने की सबसे ज्यादा जरूरत है। लेकिन सिर्फ हमारे ही मुल्क में ऐसी बात नहीं है। दरअसल, एक माने में, यह स्थिति दुनिया भर में पाई जाती है। मेरे एक पुराने और प्रतिष्ठित साथी ने कहा कि यह हालत इसलिए पैदा हो गई है कि हमारे पास कोई जीवन-दर्शन नहीं है। दरअसल, सारी दुनिया एक दार्शनिक दृष्टिकोण के अभाव से पीड़ित है। अपने देश को भौतिक-दृष्टि से खुशहाल बनाने की कोशिश में हमने मानवीय स्वभाव के आध्यात्मिक तत्वों पर कोई ध्यान नहीं दिया है। इसलिए व्यक्ति और राष्ट्र को उद्देश्य की भावना देनी होगी; कुछ ऐसा देना होगा जिसके लिए मनुष्य जीवित रहे और अगर जरूरत हो तो मृत्यु का भी आलिंगन कर सके। हमें एक प्रकार के नये जीवन-दर्शन का निर्माण करना होगा, और व्यापक-अर्थ में चिंतन-मनन के लिए एक आध्यात्मिक पृष्ठ-भूमि प्रदान करनी होगी। हम कल्याणकारी राज्य, लोकतंत्र और समाजवाद की बातें करते हैं। यह सभी अच्छी धारणाएं हैं, लेकिन उनके मतलब साफ और स्पष्ट नहीं हैं। तो, यह दलील पेश की गई। और फिर, सवाल उठा कि हमारा आखिर मकसद क्या होना चाहिये। लोकतंत्र और समाजवाद किसी

लक्ष्य के साधन हैं, खुद लक्ष्य नहीं हैं। हम समाज के कल्याण की बात करते हैं। क्या यह समाज में रहनेवाले व्यक्तियों से अलग और उनके कल्याण से परे कोई चीज है? अगर समाज के लिए कल्याणकारी चीजों के लिए व्यक्ति की उपेक्षा की जाय और उसके हितों का बलिदान किया जाय तो क्या इस मकसद को अच्छा कहा जायगा?

यह मान लिया गया कि व्यक्ति का बलिदान नहीं होना चाहिए, और दरअसल, असली सामाजिक तरक्की उसी हालत में हासिल होगी, जब व्यक्ति को विकसित होने का मौका दिया जायगा; बशर्तेकि व्यक्ति एक चुना हुआ पृथक्-वर्ग न हो, बल्कि समूचे समाज का प्रतिनिधित्व करता हो, इसलिए असली कसौटी यह होनी चाहिए कि कोई भी राजनीतिक या सामाजिक सिद्धांत व्यक्ति को अपने स्वार्थ के निम्न स्तर से ऊपर उठने में कहां तक मदद देता है, ताकि वह सभी लोगों की भलाई के रूप में सोच सके। जिंदगी का नियम प्रतिस्पर्धा या संचय-वृत्ति पर नहीं, बल्कि सहकारिता पर आधारित होना चाहिए, जिसके भीतर हर इकाई की भलाई सबकी भलाई में योग देती हो। ऐसे समाज में फर्जों पर जोर होगा, हकों पर नहीं। फर्ज अदा करने पर अपने-आप हक मिलने लगेंगे। हमें तालीम को एक नई दिशा देनी होगी और एक नये किस्म की मानवता का निर्माण करना होगा।

इस तर्क से हम वेदांत की पुरानी कल्पना पर पहुंचे कि इस जगत् में हर जड़ या चेतन वस्तु का एक निश्चित स्थान है; हर तत्त्व में वह रोशनी मौजूद है, जिसे दैवी प्रेरणा या बुनियादी शक्ति या जीवनशक्ति कहा जा सकता है और जो सारी सृष्टि में व्याप्त है। इस कल्पना से हम सूक्ष्म भावनाओं के क्षेत्र में पहुंच जाते हैं। वह हमें जिंदगी के उन व्यावहारिक मसलों से दूर खींच ले जाती है, जिनका हमें मुकाबला करना है। मेरा खयाल है कि अगर किसी भी विचारधारा का अनुगमन किया जाय तो हम कुछ-न-कुछ हद तक आध्यात्मिक क्षेत्र में पहुंच जाते हैं। यहां तक कि आज का विज्ञान भी ऐसे किनारे पर पहुंच गया है, जहां सभी तरह की अविश्वसनीय और अचिंतनीय बातों का अस्तित्व है। मैं इन भावात्मक पहलुओं की चर्चा करना नहीं चाहता, लेकिन खुद

यह दलील बतलाती है कि किस तरह हमारा दिमाग भौतिक दुनिया की नींव में पड़े हुए बुनियादी तत्वों को ढूंढ़ रहा है। अगर हम जीवन-सिद्धांत की इस सर्वव्यापी धारणा में सचमुच यकीन रखते हैं तो इससे हमें जाति, फिर्का और वर्ग की हमारी कुछ संकुचित सीमाओं से छुटकारा पाने में मदद मिल सकती है और हम जिंदगी के मसलों के बारे में अपना दृष्टिकोण अधिक सहिष्णु और अनुकूल बना सकते हैं।

लेकिन जाहिर है कि इससे हमारे मौजूदा मसले हल नहीं होते और एक अर्थ में, हम जहां-के-तहां खड़े रह जाते हैं। भारत में हम कल्याण-कारी राज्य और समाजवाद की बात करते हैं। एक दृष्टि से हर देश, चाहे वह पूंजीवादी हो, समाजवादी हो या साम्यवादी, कल्याणकारी राज्य के आदर्श को स्वीकार करता है। कम-से-कम कुछ देशों में तो पूंजीवाद ने इस सामाजिक कल्याण को काफी हदतक हासिल कर लिया है, हालांकि वह खुद अपने मसले हल नहीं कर सका है और लगता है कि उसमें जैसे किसी बुनियादी चीज की कमी हो। इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है कि पूंजीवाद से जुड़े हुए लोकतंत्र ने पूंजीवाद की कितनी ही बुराइयों को कम कर दिया, और दरअसल, पूंजीवाद वही नहीं रह गया है जो दो-एक पीढ़ियों पहले था। औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में आर्थिक विकास की एक सतत और मजबूती से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति रही है। विश्व-महायुद्धों के कारण भी भयानक नुकसान हुए, उनसे भी इस प्रवृत्ति में कोई रुकावट पैदा नहीं हुई है। कम-से-कम इन विकसित देशों के मामलों में तो यह बिल्कुल सही है। इसके अलावा, यह आर्थिक विकास सभी वर्गों में फैला हुआ है, हालांकि उनमें मात्राओं का अंतर है। लेकिन यह बात उन देशों पर लागू नहीं होती, जो औद्योगिक दृष्टि से आगे नहीं बढ़े हैं। सच तो यह है कि इन देशों में विकास की कशमकश बहुत कठिन है और कभी-कभी तो कोशिशों के बावजूद आर्थिक असमानताएं न सिर्फ कायम रही हैं, बल्कि और भी बढ़ने लगी हैं। सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि अगर बिना किसी रुकावट के पूंजीवादी समाज की ताकतों को सक्रिय छोड़ दिया जाय तो वे संपन्न लोगों को ज्यादा संपन्न और विपन्न लोगों को ज्यादा विपन्न बनाने लगती

हैं। इसलिए, उनके बीच की खाई और चौड़ी हो जाती है। यह बात न सिर्फ देशों पर, बल्कि देशों के भीतर भिन्न-भिन्न वर्गों, क्षेत्रों और समूहों पर भी लागू होती है। लेकिन इन सामान्य प्रवृत्तियों के रास्ते में भी मुख्तलिफ लोकतंत्रीय प्रतिक्रियाएं दखलंदाजी करती हैं। इसलिए, स्वयं पूंजीवाद ने कुछ समाजवादी विशेषताओं को विकसित किया, हालांकि पूंजीवाद के खास-खास पहलू कायम हैं।

बेशक, समाजवाद जान-बूझकर सामान्य प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप करना चाहता है, और इस तरह न सिर्फ उत्पादक शक्तियों को बढ़ाता है, बल्कि असमानताएं भी कम करता है। लेकिन यह समानताएं हैं क्या चीज ? इसका ठीक-ठीक जवाब देना मुश्किल है और इसकी बेइन्तिहा व्याख्याएं की गई हैं। शायद कुछ लोग मोटे तौर पर समाजवाद को ऐसी चीज समझते हैं, जिससे भलाई होती है और जिसका मकसद समानता पैदा करना है। लेकिन इससे हम बहुत आगे नहीं बढ़ते। बुनियादी तौर पर, समाजवाद का दृष्टिकोण पूंजीवादी दृष्टिकोण से मुख्तलिफ है। मेरे खयाल से यह सही है कि उनके बीच की चौड़ी खाई इस वजह से कम हो रही है कि समाजवाद के कितने ही आदर्श पूंजीवादी ढांचे में शामिल होते जा रहे हैं। आखिर, समाजवाद केवल जिंदगी का एक तरीका ही नहीं है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक मसलों को हल करने का एक निश्चित वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। अगर समाजवाद किसी पिछड़े और अर्द्ध-विकसित देश पर लागू किया जाय, तो उसकी वजह से उसमें अचानक कोई तरक्की नहीं होगी, और उसका पिछड़ापन कम नहीं होगा। सच तो यह है कि उस हालत में हमारा समाजवाद पिछड़ा हुआ और गरीबी में फंसा हुआ समाजवाद होगा।

दुर्भाग्यवश, साम्यवाद के कितने ही राजनीतिक पहलुओं ने हमारे साम्यवाद संबंधी दृष्टिकोण को खराब कर दिया है। यही नहीं, साम्यवाद ने जद्दोजहद का जो तरीका अख्तियार किया है, उसमें हिंसा को प्रमुख भूमिका प्रदान की ग है। इसलिए समाजवाद पर इन राजनीतिक तत्त्वों या हिंसा की अपरिहार्यता से पृथक रूप में विचार करना चाहिए। इससे हमें यह सबक मिलता है कि किसी समाज के सामाजिक, राजनीतिक

और बौद्धिक जीवन का सामान्य स्वरूप उसके उत्पादक साधनों द्वारा अनुशासित होता है। जिस तरह उत्पादक साधन तब्दील और विकसित होते हैं, उसी तरह समाज का जीवन और चिंतन तब्दील होता रहता है।

साम्राज्यवाद अथवा उपनिवेशवाद ने प्रगतिशील सामाजिक शक्तियों को दबाया और इस समय भी दबा रहा है। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि वह कुछ अधिकारयुक्त वर्गों या तबकों का पक्ष लेता है, क्योंकि यह सामाजिक और आर्थिक स्थिति को यथावत कायम रखने में दिलचस्पी रखता है। आजादी पा लेने के बाद भी कोई देश दूसरे मुल्कों पर आर्थिक दृष्टि से आश्रित रह सकता है, लेकिन इस तरह की चीज को मुलम्मे के साथ यह कहा जाता है कि उनके बीच सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध हैं।

हम कभी-कभी गांव की आत्म-निर्भरता की बात करते हैं। इस सवाल को विकेंद्रीकरण के विचार से संयुक्त कर देना ठीक नहीं है, हालांकि यह उसका अंग हो सकता है। मेरा खयाल है कि यद्यपि अधिक सीमा तक विकेंद्रीकरण वांछनीय हैं, लेकिन अगर उसकी वजह से हम उत्पादन के पुराने और रूढ़िवादी तरीकों से ही चिपके रह जायं, तो उसका साफ-साफ मतलब यह होगा कि हम उन आधुनिक तरीकों का इस्तेमाल नहीं करेंगे, जिनसे पश्चिम के कुछ देशों में जबर्दस्त भौतिक विकास हुआ है। मतलब यह कि हम गरीब के गरीब बने रह जायंगे। यही नहीं, बल्कि हम बढ़ती हुई आबादी के दबाव के कारण और भी ज्यादा गरीब हो जायंगे। हम शक्ति के नये साधनों का प्रयोग करें, जो हमें विज्ञान से हासिल हुए हैं। इसके सिवाय गरीबी के इस दुश्चक्र से बाहर आने का मुझे कोई रास्ता नहीं दिखलाई देता। गरीब होने की वजह से हमारे पास इतनी पूंजी नहीं बची है कि हम उसका विनियोजन कर सकें। इसलिए हम लगातार गरीबी में डूबते जारहे हैं।

हमें शक्ति और आधुनिक तरीकों से उपलब्ध नये साधनों से फायदा उठाकर इस बाधा को पार करना है। लेकिन ऐसा करने में हमें बुनियादी मानव-तत्व को, और इस बात को हरगिज नहीं भुला देना चाहिए कि

हमारा मकसद व्यक्ति का विकास करना है और असमानता को कम करना है। हमें जिंदगी के नैतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को नहीं भूलना चाहिए, जो अंततः संस्कृति और सभ्यता की बुनियाद हैं और जिन्होंने जिंदगी को सार्थकता प्रदान की है।

याद रखना होगा कि समाजवादी या पूंजीवादी तरीकों में ही कोई ऐसा जादू नहीं है कि उसे अपना लेने पर अचानक गरीबी खत्म हो जायगा और खुशहाली बढ़ जायगी। खुशहाली का एक मात्र रास्ता कठिन श्रम है, राष्ट्र की उत्पादकता में वृद्धि करना है और उसके उत्पादन के न्यायोचित बंटवारे की व्यवस्था करना है। यह सारी प्रक्रिया लम्बी और मुश्किल है। एक ऐसे मुल्क में, जिसका विकास बहुत ही कम हुआ है, पूंजीवादी तरीके से कोई मकसद हासिल करना मुश्किल है। सिर्फ समाजवादी तरीके पर आयोजित दृष्टिकोण अपना करके ही हम मजबूत और लगातार तरक्की कर सकते हैं, हालांकि उसमें भी काफी समय लगेगा। जब यह प्रक्रिया चालू हो जायगी, तो उसके दौरान हमारी जिंदगी और हमारे चिंतन का ढांचा धीरे-धीरे तब्दील होता जायगा।

इसके लिए आयोजन बहुत जरूरी है, क्योंकि ऐसा न होने पर हमारे सीमित साधनों की काफी बरबादी होगी। आयोजन का मतलब परियोजनाओं अथवा योजनाओं को इकट्ठा कर देना नहीं, बल्कि तरक्की की बुनियाद और रफ्तार को दृढ़तर बनाना है, ताकि हर पहलू से समाज आगे बढ़े। भारत के कितने ही बड़े-बड़े इलाकों में, अत्यधिक गरीबी की भयंकर समस्या है, हालांकि सामान्य गरीबी कुछ हद तक सारे मुल्क में पाई जाती है। हमारे सामने हमेशा एक मुश्किल चुनाव करने की समस्या है। सोचना यह है कि क्या हम कुछ चुने-चुनाए और सुविधाप्राप्त क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने पर ही अपने प्रयासों को केंद्रित करें और इस समय गरीब इलाकों को छोड़ दें या साथ-साथ गरीब इलाकों को भी विकसित करते चलें, ताकि विभिन्न प्रदेशों के बीच किसी तरह की असमानता ना रहे या कम होती जाय। हमें इन दोनों के बीच का रास्ता निकाल लेना है, और एक समन्वित राष्ट्रीय योजना तैयार करनी है। वह राष्ट्रीय योजना किसी भी हालत में कठोर नहीं होनी चाहिए। किसी रूढ़ि पर

उसे आधारित करना ठिक नहीं, बल्कि उसका निर्माण मौजूदा तथ्यों और स्थितियों को ध्यान में रख कर ही होना चाहिए। मेरा खयाल है कि उसे कई क्षेत्रों में निजी उद्योगों को भी बढ़ावा देना चाहिए। खास-तौर पर आज के भारत में, हालांकि यह निजी उद्योग-क्षेत्र भी अनिवार्य रूप से राष्ट्रीय योजना के अनुकूल होना चाहिए और उस पर उतनी रोक-थाम अवश्य होनी चाहिए, जितनी जरूरी हो।

भूमि-सुधारों का एक खास महत्व है, क्योंकि इनके बगैर, खासतौर पर भारत जैसे उंचे घनत्ववाले देश में, खेती की उत्पादिता में कोई बड़ा सुधार नहीं हो सकता। लेकिन भूमि-सुधारों का असली मकसद इससे भी ज्यादा गहरा है। इनका उद्देश्य एक स्थिर समाज के पुराने वर्गीय ढांचे को भंग करके उसे नया रूप देना है।

हम सामाजिक सुरक्षा चाहते हैं, लेकिन हमें यह मंजूर करना होगा कि सामाजिक सुरक्षा सिर्फ उसी हालत में संभव है, जब कुछ हद तक विकास हो चुका हो। अन्यथा, न तो हम विकास ही कर सकते हैं, और न हमें सामाजिक सुरक्षा ही हासिल हो सकती है।

जाहिर है कि आखिरकार मानव प्राणियों की क्षमता और गुणों का ही महत्व है। मनुष्य ही किसी राष्ट्र की संपदा और उसकी सांस्कृतिक उन्नति का निर्माता है। इसलिए तालीम और स्वास्थ्य का महत्व बहुत अधिक है, ताकि मानव प्राणियों में आवश्यक गुण उत्पन्न किया जा सके। इस मामले में भी साधनों की कमी से हमारे सामने कठिनाइयां हैं, लेकिन, फिर भी, हमें हमेशा याद रखना है कि सिर्फ सही किस्म की तालीम और अच्छे स्वास्थ्य से ही किसी देश के आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उत्थान की बुनियाद का निर्माण होता है।

इस प्रकार, राष्ट्रीय आयोजन का उद्देश्य, अल्पकालीन और दीर्घ-कालीन, दोनों ही होना चाहिए। दीर्घकालीन उद्देश्य हमारे सम्मुख सच्ची तस्वीर पेश करता है। उसके बगैर, अल्पकालीन आयोजन बिल्कुल फिजूल होगा। और हम ऐसी जगह पहुंच जायंगे जहां अंधेरा ही अंधेरा होगा। इसलिए आयोजन हमेशा पूर्वकल्पित आयोजन होगा और उसके समक्ष वे सभी भौतिक मकसद होंगे, जिनके लिए इस समय हम प्रयत्नशील हैं।

दूसरे शब्दों में, यह एक भौतिक आयोजन होगा, हालांकि वित्तीय साधनों और आर्थिक परिस्थितियों से वह जाहिरा तौर पर सीमित होगा।

इस समय भारत के सामने जो मसले पेश हैं, वे कुछ हद तक दूसरे देशों में भी मौजूद हैं। लेकिन इससे भी ज्यादा अहम बात यह है कि उन में कुछ ऐसी नई समस्याएं भी हैं, जो अपना सानी नहीं रखतीं या इतिहास में उनका कोई दृष्टांत नहीं मिलता। औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में भूतकाल में जो कुछ हुआ है, वह हमारे लिए आज की स्थिति में कुछ विशेष महत्व नहीं रखता। दरअसल, आज जो देश विकसित हैं, वे भूतकाल में भी आज के भारत की अपेक्षा अच्छी हालत में थे। औद्योगीकरण शुरू होने के पहले भी उनकी प्रति-व्यक्ति आय भारत से ज्यादा थी। इसलिए, पश्चिमी अर्थशास्त्र उपयोगी होने के बावजूद, हमारी आज की समस्याओं की दृष्टि से बहुत कम महत्व रखता है। यही बात मार्क्सवादी अर्थशास्त्र पर भी लागू होती है, हालांकि आर्थिक प्रक्रियाओं पर वह काफी रोशनी डालता है। फिर भी, दोनों आज के लिए पुराने ही हैं। इसलिए हमें दूसरों की मिसालों से फायदा उठाते हुए अपने तरीके से सोचना है और ऐसे रास्ते निकालने हैं जो खुद हमारे हालात के लिए उपयुक्त हों।

अपने मसलों के इन आर्थिक पहलुओं पर विचार करते समय हमें हमेशा शांतिमय साधनों के बुनियादी दृष्टिकोण को याद रखना होगा, और शायद हम प्राणशक्ति के पुराने वेदांती आदर्श को भी दृष्टिगत रख सकते हैं जो दरअसल, इस दुनिया की हर वस्तु का आंतरिक आधार है।

परिशिष्ठ—ख

औद्योगिक नीति-प्रस्ताव

भारत सरकार, नई दिल्ली, ३० अप्रैल, १९५६

संख्या ९१/सी एफ/४८—भारत-सरकार ने ६ अप्रैल, १९४८ के अपने प्रस्ताव में वह नीति प्रस्तुत की है, जिस पर वह औद्योगिक क्षेत्र में चलना चाहती है। प्रस्ताव में कहा गया है कि अर्थ-व्यवस्था के लिए उत्पादन में वृद्धि और न्यायोचित वितरण करना जरूरी है और बताया गया है कि राज्य को उद्योगों के विकास में उत्तरोत्तर सक्रिय-योग देना चाहिए। उसमें निर्धारित किया गया कि हथियार और गोला-बारूद, आणविक-शक्ति और रेल-परिवहन तो केंद्रीय-सरकार के एकाधिकार में रहेंगे ही, उनके अलावा छह बुनियादी उद्योगों के क्षेत्र में नये प्रयास स्थापित करने की जिम्मेदारी एकमात्र राज्य की होगी, सिवाय उस अवस्था में जब राज्य खुद राष्ट्रीय हित में निजी उद्योग का सहयोग हासिल करना जरूरी समझे। शेष औद्योगिक क्षेत्र निजी प्रयास के लिए छोड़ दिया गया था, हालांकि यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि राज्य भी इस क्षेत्र में उत्तरोत्तर भाग लेगा।

२. औद्योगिक-नीति संबंधी इस घोषणा को हुए आठ साल का समय गुजर चुका है। इन वर्षों में भारत में अनेक परिवर्तन और घटनाएं हुई हैं। भारत का संविधान स्वीकृत हुआ है, जो कतिपय बुनियादी अधिकारों की गारंटी देता है और राज्य-नीति के निर्देशक-सिद्धांतों का बखान करता है। आयोजन-व्यवस्थित आधार पर हुआ है और प्रथम पंचवर्षीय-योजना हाल में पूरी हुई है। संसद ने समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था को सामाजिक और आर्थिक-नीति का लक्ष्य स्वीकार किया है। इन महत्वपूर्ण घटनाओं के कारण जरूरी हो गया है कि औद्योगिक-नीति को फिर से प्रकट किया जाय, खासकर इसलिए भी कि दूसरी पंच-

वर्षीय-योजना शीघ्र ही देश के सामने पेश की जायगी। यह नीति संविधान में निर्धारित सिद्धांतों, समाजवाद के लक्ष्य और इन वर्षों में प्राप्त अनुभवों के अनुसार होगी।

३. भारत के संविधान ने अपनी भूमिका में, घोषित किया है कि वह अपने समस्त नागरिकों के लिए

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,

दर्जे और अवसर की समानता, और व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता कायम रखते हुए उन सब में भाईचारे की स्थापना करना चाहता है।

राज्य-नीति संबंधी अपने निर्देशक सिद्धांतों में यह कहा गया है कि

"राज्य अपनी शक्ति भर ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना और संरक्षण द्वारा लोगों का हित-साधन करेगा, जिसमें राष्ट्र-जीवन की हर संस्था सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की भावना से प्रेरित होगी।"

"राज्य विशेष रूप से अपनी नीति को इस प्रकार चलायेगा :

(क) सब नागरिकों को, स्त्रियों और पुरुषों को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त हों;

(ख) भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस तरह विभाजित किया जाय कि सामूहिक हित की सर्वोत्तम ढंग से पूर्ति हो सके;

(ग) आर्थिक प्रणाली का संचालन ऐसा न हो कि संपत्ति और उत्पादन के साधनों का सामूहिक हित के विपरीत केंद्रीयकरण हो;

(घ) स्त्रियों और पुरुषों को समान काम मिले।

(ङ) पुरुष और महिला-मजदूरों के स्वास्थ्य और शक्ति और बच्चों की कोमल आयु का दुरुपयोग न हो और नागरिकों को आर्थिक आवश्यकताओं से बाध्य होकर ऐसे व्यवसाय न अपनाने पड़ें जो उनकी आयु और शक्ति के लिए अनुपयुक्त हों;

(च) बाल-अवस्था और जवानी को शोषण एवं नैतिक और भौतिक हानि से बचाया जाय।"

४. इन बुनियादी और आम सिद्धांतों को अधिक निश्चित दिशा उस समय मिली जब संसद ने दिसंबर १९५४ में समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था को सामाजिक और आर्थिक-नीति का लक्ष्य स्वीकार किया। यह औद्योगिक-नीति और अन्य नीतियां इन सिद्धांतों और निर्देशों के अनुसार चलनी चाहिए।

५. इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए, यह जरूरी होगा कि आर्थिक विकास की गति को तेज किया जाय और औद्योगीकरण शीघ्रता से किया जाय; खासकर भारी उद्योगों और मशीन-निर्माता उद्योगों का विकास किया जाय, राजकीय औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार किया जाय और एक बड़े और विकासशील सहकारी क्षेत्र का निर्माण किया जाय। इससे आम जनता के लिए लाभदायी रोजगार के अवसर बढ़ाने और उसके जीवन-मान और काम की परिस्थितियों को सुधारने के आर्थिक आधारों का निर्माण होगा। उतना ही जरूरी यह भी है कि आय और संपत्ति की वर्तमान विषमताओं को कम किया जाय और विभिन्न क्षेत्रों में मुट्ठी भर लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण और निजी एकाधिकारों को रोका जाय। तदनुसार राज्य नये औद्योगिक संस्थान कायम करने और परिवहन सुविधाओं का विकास करने की उत्तरोत्तर प्रमुख और प्रत्यक्ष जिम्मेदारी अपने सिर पर लेगा। वह अधिकाधिक पैमाने पर राजकीय व्यापार की भी शुरुआत करेगा। साथ ही, देश की विकासशील अर्थ-व्यवस्था के संदर्भ में आयोजित राष्ट्रीय-विकास की एजेंसी रूप में निजी औद्योगिक क्षेत्र को विकास और विस्तार का अवसर मिलेगा। जहां संभव हो, सहकारिता के सिद्धांत पर अमल किया जाय और निजी क्षेत्र के कामों के सतत बढ़ते हुए अनुपात का सहकारी आधार पर विकास किया जाय।

६. समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था को राष्ट्रीय लक्ष्य स्वीकार कर लेने और आयोजित एवं शीघ्र विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बुनियादी और सुरक्षा-संबंधी महत्वपूर्ण उद्योगों अथवा सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं संबंधी उद्योगों को राजकीय क्षेत्र में चलाया जाय। ऐसे उद्योग, जो जरूरी हैं और जिनमें बड़ी मात्रा में

पूंजी लगाना होगा, और वर्तमान परिस्थितियों में राज्य ही उसकी व्यवस्था कर सकेगा, उन्हें भी राजकीय क्षेत्र में ही रहना होगा। इसलिए राज्य को व्यापक क्षेत्र में उद्योगों के भावी विकास की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी लेनी होगी। फिर भी कुछ मर्यादाएं हैं, जिनकी वजह से इस समय राज्य को वह क्षेत्र बता देना होगा, जिसमें वही भावी-विकास के लिए एकमात्र उत्तरदायी होगा और उन उद्योगों का चुनाव करना होगा, जिनके विकास में वह प्रमुख भाग लेगा। योजना-आयोग के परामर्श से, समस्या के सब पहलुओं पर विचार करने के बाद भारत-सरकार ने हरेक उद्योग में राज्य के संभावित योग को ध्यान में रखते हुए उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभक्त करने का फैसला किया है। ये श्रेणियां कुछ हद तक एक-दूसरे के क्षेत्र में दखल देंगी, और बहुत अधिक कठोरता लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक हो सकती है। किंतु बुनियादी सिद्धांतों और लक्ष्यों को हमेशा ध्यान में रखना होगा और आगे उल्लिखित आम हिदायतों पर अमल करना होगा। यह भी याद रखना होगा कि राज्य किसी भी प्रकार के औद्योगिक-उत्पादन को हाथ में ले सकता है।

७. पहली श्रेणी में ऐसे उद्योग होंगे, जिनके भावी-विकास की जिम्मेदारी एकमात्र राज्य की होगी। दूसरी श्रेणी में ऐसे उद्योग होंगे, जो उत्तरोत्तर राज्य के स्वामित्व में चलेंगे, और जिनमें राज्य नये औद्योगिक संस्थान स्थापित करने में आमतौर पर पहल करेगा, किन्तु जिनमें निजी उद्योगपतियों से राज्य के प्रयास में पूरक बनने की अपेक्षा रखी जायगी। तीसरी श्रेणी में शेष सब उद्योग होंगे और उनका भावी विकास आमतौर पर निजी क्षेत्र की पहल और प्रयास पर छोड़ दिया जायगा।

८. पहली श्रेणी के उद्योगों को इस प्रस्ताव की (सूची-क) में शामिल किया गया है। इन उद्योगों में सभी नई ईकाइयां केवल राज्य स्थापित करेगा। वे ईकाइयां अपवाद होंगी, जिन्हें स्थापित करने की मंजूरी पहले से निजी क्षेत्र को दी जा चुकी है। अगर राष्ट्रीय हित में जरूरी होगा तो मौजूदा निजी स्वामित्व में चल रही ईकाइयों का विस्तार किया जा सकेगा अथवा नयी ईकाइयों की स्थापना में राज्य निजी प्रयास का सह-

योग हासिल कर सकेगा। किंतु रेल और वायुयान परिवहन, हथियार और गोला-बारूद और अणु-शक्ति उद्योगों को केंद्रीय-सरकार के एकाधिकार में विकसित किया जायगा। जब कभी निजी-प्रयास से सहयोग जरूरी होगा, उद्योग की पूंजी में प्रमुख हिस्सा लेकर अथवा अन्य प्रकार से राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा कि उस औद्योगिक ईकाई की नीति का निर्देशन और कार्य-संचालन करने की उसे आवश्यक सत्ता प्राप्त हो जाय।

९. दूसरी श्रेणी में वे उद्योग होंगे, जिनकी गणना (सूची-ख) में की गई है। भावी विकास की गति तेज करने की दृष्टि से, राज्य इन उद्योगों में नई ईकाइयां स्थापित करेगा। साथ ही निजी उद्योगपतियों को अपने-आप या राज्य की हिस्सेदारी में इस क्षेत्र में विकास का मौका दिया जायगा।

१०. शेष सब उद्योग तीसरी श्रेणी में आयंगे और यह आशा की जाती है कि आमतौर पर उनका विकास निजी क्षेत्र की पहल और प्रयास से हो; अवश्य ही राज्य को यह स्वतंत्रता होगी कि वह इस श्रेणी में भी किसी उद्योग की शुरुआत कर सके। राज्य की यह नीति होगी कि पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार इन उद्योगों के विकास के लिए सुविधाएं और प्रोत्साहन दे। इसके लिए राज्य परिवहन, बिजली और अन्य सेवाओं का विकास करेगा और कर-संबंधी और अन्य उचित क़दम उठायगा। राज्य ऐसी संस्थाओं के निर्माण में योग देता रहेगा जो इन उद्योगों को वित्तीय सहायता देंगी और औद्योगिक और कृषि-कार्यों के लिए सहकारी आधार पर संगठित उद्योगों को विशेष सहायता दी जायगी। उपयुक्त मामलों में, राज्य निजी क्षेत्र को वित्तीय सहायता भी दे सकता है। इस प्रकार की सहायता, विशेषकर जब सहायता की राशि काफी बड़ी हो, प्रधानतः उद्योग के साधारण हिस्से खरीदकर दी जायगी; हालांकि कुछ मदद कंपनी के बॉण्ड खरीद करके भी दी जा सकती है।

११. निजी क्षेत्र के औद्योगिक संस्थानों को लाजमी तौर पर राज्य को सामाजिक और आर्थिक नीति के दायरे में अपना स्थान लेना होगा

और वे औद्योगिक (विकास और नियंत्रण) कानून और अन्य संबंधित कानूनों के नियंत्रण और नियमन में रहेंगे। किंतु भारत सरकार मानती है कि आम तौर से इन उद्योगों को राष्ट्रीय योजना के लक्ष्यों और उद्देश्यों के अनुसार अपने विकास की यथासंभव अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता दी जाय। जहां एक ही उद्योग में निजी और राजकीय दोनों के स्वामित्व में चलनेवाली ईकाइयां हों, वहां राज्य की यह नीति जारी रहेगी कि उन दोनों के साथ निष्पक्ष और बिना किसी भेदभाव के व्यवहार किया जाय।

१२. उद्योगों को श्रेणियों में विभक्त करने का यह मतलब नहीं है कि उन्हें किसी चुस्त चौखट में रख दिया गया है। अनिवार्यतः ऐसा क्षेत्र तो होगा ही, जिसमें एक श्रेणी का उद्योग दूसरी श्रेणी में जा सकेगा, बल्कि राजकीय और निजी क्षेत्रों के उद्योगों के मध्य काफी मात्रा में गठबंधन भी होगा। अगर आयोजन की आवश्यकताओं के लिए जरूरी होगा और अन्य महत्वपूर्ण कारण होंगे तो राज्य ख-श्रेणी में शामिल नहीं हुए किसी भी उद्योग को शुरू कर सकेगा। उपयुक्त मामलों में, निजी स्वामित्व में चलनेवाली ईकाइयों को क-सूची में शामिल किसी वस्तु को अपनी खुद की जरूरतें पूरी करने या उप-उत्पादन के रूप में तैयार करने की इजाजत दी जा सकती है। अगर निजी स्वामित्व में चलने-वाली छोटी ईकाइयां छोटी मोटर, नौकाएं अथवा अन्य हल्के जलवाहन बनायें और स्थानीय जरूरतों के लिए और लघु खनिज कार्यों के निमित्त बिजली पैदा करें तो सामान्यतः इस पर कोई रोक नहीं होगी। इसके अलावा राजकीय क्षेत्र के भारी उद्योग हल्के पुर्जों की अपनी कुछ जरूरतें निजी क्षेत्र से हासिल कर सकते हैं और इसी प्रकार निजी क्षेत्र अपनी अनेक जरूरतों के लिए राजकीय क्षेत्र पर निर्भर कर सकता है। यही सिद्धांत और भी अधिक जोर के साथ बड़े और लघु उद्योगों के आपसी संबंधों पर लागू होगा।

१३. भारत सरकार, इस संदर्भ में, राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास में कुटीर, ग्रामीण और लघु उद्योगों के योग पर जोर देगी। जिन समस्याओं को तत्काल हल किया जाना है, उनमें से कुछ के बारे में

इन उद्योगों में कुछ विशेष सुविधाएं मौजूद हैं। वे तुरंत बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार देते हैं, वे राष्ट्रीय आय को अधिक न्यायोचित आधार पर वितरित करने का उपाय प्रस्तुत करते हैं और पूंजी और कार्यकुशलता संबंधी ऐसे साधनों का उपयोग संभव बनाते हैं, जो अन्यथा बेकार पड़े रह सकते हैं। शहरों के अनियोजित विस्तार से जो समस्याएं पैदा होती हैं, उनमें से कुछ को सारे देश में औद्योगिक उत्पादन के लघु केन्द्रों की स्थापता करके टाला जा सकता है।

१४. राज्य कुटीर, ग्राम और लघु उद्योगों को मदद देने की नीति पर चल रहा है। इसके लिए वह बड़े उद्योगों के उत्पादन की मात्रा पर प्रतिबंध लगाता है; दोनों पर भिन्न तरीके से कर लगाता है, और प्रत्यक्ष वित्तीय अनुदान देता है। जहां कहीं जरूरी होगा, ऐसे क़दम उठाये जाते रहेंगे, किंतु राज्य की नीति का उद्देश्य यह होगा कि विकेंद्रित क्षेत्र स्वावलंबी बनने की पर्याप्त शक्ति हासिल कर ले और उसका विकास बड़े उद्योगों के साथ समन्वित हो जाय। इसलिए राज्य लघु उत्पादन की प्रतियोगी शक्ति को बढ़ाने के लिए अधिकाधिक क़दम उठायेगा। इसके लिए यह जरूरी है कि उत्पादन-तकनीक में निरंतर सुधार किया जाय और उसे आधुनिक बनाया जाय, और परिवर्तन को इस तरह नियंत्रित किया जाय कि जहांतक संभव हो, तकनीकी बेकारी उत्पन्न न हो। तकनीकी और वित्तीय सहायता तथा उपयुक्त कार्य-स्थान का अभाव और औजारों की मरम्मत एवं उन्हें ठीक हालत में रखने की सुविधाएं लघु उत्पादकों के मार्ग की कुछ मुख्य कठिनाइयां हैं। इन कमियों को दूर करने के लिए औद्योगिक बस्तियों और ग्राम सामुदायिक उद्योग-गृहों की स्थापना करके एक क़दम उठाया गया है। गांवों में बिजली पहुंचाने से और बिजली ऐसी कीमत पर सुलभ करने से जिसे श्रमिक अदा कर सकें, लघु उत्पादकों को काफी मदद मिलेगी। औद्योगिक सहकारी समितियों के गठन से लघु उत्पादन संबंधी अनेक कामों को बड़ी मदद मिलेगी। ऐसे सहकारी संगठनों को हर प्रकार से मदद दी जाय और राज्य कुटीर, ग्राम और लघु उद्योगों के विकास के लिए निरंतर ध्यान दें।

१५. उद्योगीकरण से देश की अर्थव्यवस्था को समग्र रूप से लाभ पहुंचे, इसके लिए यह जरूरी है कि विभिन्न क्षेत्रों के विकास-स्तरों की विषमताओं को उत्तरोत्तर कम किया जाय। देश के विभिन्न भागों में उद्योगों का अभाव बहुधा इसलिए है कि वहां आवश्यक कच्चा माल और अन्य प्राकृतिक साधन उपलब्ध नहीं हैं। कुछ क्षेत्रों में उद्योगों की भीड़ इसलिए है कि उनमें बिजली, पानी और परिवहन की सुविधाएं आसानी से उपलब्ध हैं, जिनका उन क्षेत्रों में विकास किया गया है। राष्ट्रीय आयोजन का एक उद्देश्य यह है कि जो क्षेत्र अभी औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं अथवा जहां रोजगार के अवसर उपलब्ध करने की अधिक जरूरत है, वहां ये सुविधाएं बराबर सुलभ की जायं। अवश्य ही यह देखना होगा कि उद्योगों का स्थान अन्यथा उपयुक्त हो। हर क्षेत्र की औद्योगिक और कृषि-व्यवस्था के संतुलित और समन्वित विकास से ही सारा देश उच्चतर जीवन-मान हासिल कर सकेगा।

१६. औद्योगिक-विकास के इस कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए देश को बड़ी संख्या में तकनीकी और प्रबंध-कर्मचारी तैयार करने होंगे। राजकीय क्षेत्र के विस्तार की तेजी से बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने और ग्राम तथा लघु-उद्योगों के विकास के लिए राजकीय सेवाओं में योग्य-प्रबंधक और तकनीकी दल स्थापित किये जा रहे हैं। देख-रेख करने-वाले कर्मचारियों की कमी को दूर करने, राजकीय और दोनों प्रकार के उद्योगों में बड़े पैमाने पर उम्मीदवार प्रशिक्षित करने की योजनाओं पर अमल करने तथा विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थाओं में व्यावसायिक प्रबंध की शिक्षा-सुविधाओं का विस्तार करने के लिए भी कदम उठाये जा रहे हैं।

१७. यह जरूरी है कि उद्योग में काम करनेवाले सब लोगों को उचित सुविवधाएं और प्रोत्साहन दिया जाय। मजदूरों की रहन-सहन और काम की परिस्थितियों में सुधार किया जाय और उनकी कार्य-कुशलता का मापदंड ऊंचा किया जाय। औद्योगिक प्रगति के लिए यह बहुत जरूरी है कि औद्योगिक शांति बनी रहे। समाजवादी लोकतंत्र में मजदूर विकास के सामूहिक काम में साझीदार होता है और उसमें उसे

उत्साहपूर्वक भाग लेना चाहिए। औद्योगिक संबंधों का नियमन करने के लिए कुछ कानून बनाये गये हैं और प्रबंधक और मजदूर दोनों अपनी जिम्मेदारियों को अधिकाधिक समझते जा रहे हैं और इसके फलस्वरूप सामूहिक दृष्टिकोण का विकास हुआ है। संयुक्त परामर्श की व्यवस्था होनी चाहिए और जहां कहीं संभव हो, श्रमिकों और तकनीक जाननेवालों को उत्तरोत्तर प्रबंध में भागीदार बनाना चाहिए। इस विषय में राजकीय क्षेत्रों को उदाहरण उपस्थित करना होगा।

१८. उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में राज्य के अधिकाधिक हिस्सा लेने के कारण यह बहुत महत्वपूर्ण हो गया है कि इन कामों को किस तरह चलाया जाय और कैसे उनका प्रबंध किया जाय। यदि इन उद्योगों को कामयाब बनाना है तो निर्णय जल्दी लेने होंगे और जिम्मेदारी स्वीकार करने की तैयारी रखनी होगी। इसके लिए, जहां भी संभव हो, सत्ता को विकेंद्रित किया जाय और उनका प्रबंध व्यावसायिक आधार पर चलाया जाय। यह आशा की जायगी कि राजकीय उद्योग राज्य के राजस्व में वृद्धि करें और नये क्षेत्रों में अधिक विकास के लिए साधन उपलब्ध करें। किंतु इन उद्योगों में कभी-कभी नुकसान हो सकता है। राजकीय उद्योगों का मूल्यांकन उनके संपूर्ण परिणामों से करना होगा और उन्हें अपने कार्य-संचालन में यथासंभव अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।

१९. सन् १९४८ के औद्योगिक-नीति प्रस्ताव में कुछ अन्य विषयों की चर्चा की गई है, जिन पर उपयुक्त कानून बनाये जा चुके हैं अथवा नीति संबंधी अधिकृत वक्तव्य दिये गये हैं। उद्योगों के संबंध में केंद्रीय और राज्य-सरकारों के बीच जिम्मेदारी का विभाजन औद्योगिक (विकास और नियंत्रण) कानून में किया गया है। प्रधानमंत्री ने संसद में ६ अप्रैल १९४९ को अपने वक्तव्य में विदेशी पूंजी के बारे में राज्य की नीति प्रस्तुत की है। इसलिए इन विषयों पर इस प्रस्ताव में चर्चा करना जरूरी नहीं है।

२०. भारत-सरकार को विश्वास है कि अपनी औद्योगिक-नीति की इस पुनर्व्याख्या का जनता के सभी वर्ग समर्थन करेंगे और देश का तेजी से औद्योगिक विकास होगा।

सूची—क

१. हथियार और गोलाबारूद तथा सुरक्षा सामग्री की अन्य चीजें।

२. आणविक शक्ति।

३. लोहा और इस्पात।

४. लोहे और इस्पात की भारी ढलाई और निर्माण।

५. लोहा और इस्पात उत्पादन के लिए, खानों की खुदाई के लिए, मशीनी औजार बनाने के लिए और केंद्रीय-सरकार द्वारा निर्दिष्ट ऐसे अन्य बुनियादी उद्योगों के लिए भारी संयंत्र और मशीनरी।

६. भारी विद्युत संयंत्र, जिसमें बड़े जलीय और वाष्प टरबाइन भी शामिल हैं।

७. कोयला और भूरा हल्का कोयला (लिगनाईट)

८. खनिज तेल।

९. कच्चे लोहे, मैंगेनीज, क्रोम, जिप्सम, गंधक, सोने और हीरे का खनन।

१०. तांबे, सीसे, जस्ते, टिन, मोलिबडिनम और वुलफ्राम।

११. आणविक शक्ति (उत्पादन और उपयोग नियंत्रण) आदेश १९५३ की सूची में निर्दिष्ट खनिज।

१२. वायुयान।

१३. वायुयान परिवहन।

१४. रेल परिवहन।

१५. जहाज निर्माण।

१६. टेलिफोन और टेलिफोन तार, टेलिग्राफ (तार) और बेतार यंत्र (रेडियो सेटों को छोड़कर)।

१७. बिजली उत्पादन और वितरण

सूची—ख

१. अन्य सब खनिज, निम्न खनिजों को छोड़कर जैसा कि खनिज रियायत नियम १९४९ की धारा ३ में बताया गया है :

२. एल्युमीनियम और अन्य अलौह धातुएं, जो क-सूची में शामिल नहीं हैं।

३. मशीनी औजार।

४. मिश्रित लोहा और औजारी इस्पात।

५. रासायनिक उद्योगों के लिए जरूरी बुनियादी और मध्यम उत्पादन, जैसे दवाएं, रंग और प्लास्टिक।

६. एंटीबायोटिक और दवाएं।

७. रासायनिक खाद।

८. कृत्रिम रबड़।

९. कोयले की गैस।

१०. रासायनिक गूदा।

११. सड़क परिवहन।

१२. समुद्री परिवहन।

परिशिष्ट—ग

राज्य-पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट

भाग चौथा : अध्याय चौथा

भारत की एकता

अब हम अपने निर्दिष्ट लक्ष्य के अंतिम चरण पर पहुंच गये हैं। राज्यों के पुनर्गठन की समस्या से ऐसा तीव्र भावावेश उठ गया है और परस्पर-विरोधी दावे खड़े हो गये हैं कि वह सारी पृष्ठभूमि, जिसको आधार मानकर इस समस्या पर विचार किया जाना चाहिए, लुप्त या विलीन होने लगी है। अतः हमने अपने प्रस्तावों पर एक संतुलित दृष्टि से विचार करने के लिए दो मौलिक तथ्यों पर जोर देना उचित समझा है। पहला तथ्य यह है कि भारत के सभी राज्य, चाहे वह पुन-र्गठित हों या न हों, भारत-संघ के अभिन्न अंग हैं और रहेंगे। भारत-संघ ही हमारी सच्ची राजनीतिक सत्ता है और वही हमारी राष्ट्रीयता का एकमात्र आधार भी है। दूसरा तथ्य यह है कि भारतीय संविधान केवल एक ही नागरिकता को मान्यता देता है जो सारे देश की जनता के लिए एक और सामान्य है और जिसके अंतर्गत भारत भर में सबको समान अधिकार व अवसर प्राप्त हैं।

संभवतः, यह जान पड़ेगा कि ऐसा कहकर हमने केवल एक सर्वविदित बात को दुहरा भर दिया है। लेकिन यह मालूम होना चाहिए कि अगर इन महत्वपूर्ण तथ्यों की गुत्थियों को समझा और पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिया जाता तो क्षेत्र-वितरण की समस्या एक महान और चिंताजनक राष्ट्रीय समस्या के रूप में नहीं बढ़ पाती। अपनी जांच के सिलसिले में कई जगह हमें यह देखकर दुःख हुआ कि कुछ इलाकों में एक प्रकार का सीमायुद्ध चल रहा है। इस द्वन्द्व में आजादी की लड़ाई में एक साथ लड़नेवाले सिपाही अब एक-दूसरे के विरुद्ध कटु विवाद में डटे हुए हैं।

वह शायद यह भूल गये हैं कि राज्य एक ही राजनीतिक-शरीर के अंग-प्रत्यंग हैं और इस वजह से उनके आपसी क्षेत्रीय-पुनर्गठन का रूप विदेशी राज्यों के बीच होनेवाले झगड़ों के समान नहीं होना चाहिये। प्रादेशिकता और सांप्रदायिकता की भावना को उत्तेजित कर लोगों को क्षुब्ध करना, बड़े पैमाने पर प्रव्रजन की धमकी देना, और इस तरह की बातें करना कि यदि किसी भाषा-भाषी-वर्ग को अलग प्रशासनिक ईकाई न बनाया गया तो उसका नैतिक-पतन और भौतिक-विनाश अनिवार्य है, तथा गोलपाड़ा, पारलकीमेडी, लुधियाना और अमृतसर की घटनाओं जैसी सभी बातें लोगों में समझ और संतुलन का अभाव जाहिर करती हैं।

आगे चलकर यह सरगर्मी और वाद-विवाद एक क्षणिक अवस्था भी साबित हो सकती है। फिर भी इन घातक प्रवृत्तियों पर ध्यान न देना मूर्खता होगी। कुछ लोगों की यह पक्की धारणा है कि इन घातक प्रवृत्तियों को शांत करने का एकमात्र उपाय भारत में एकसूत्री सरकार की स्थापना और देश को पूर्णतया प्रशासन की सुविधा के आधार पर ईकाइयों में बांट देना है। हमारा विचार है कि वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा दृष्टिकोण यथार्थवादी नहीं है। इसलिए पृथकतावादी शक्तियों को रोकने के लिए कोई दूसरा उपाय करने की आवश्यकता है।

दुर्भाग्य की बात है कि कहीं-कहीं प्रादेशिकता की भावना को कुछ प्रशासनों की कार्यविधियों से प्रेरणा मिली है। हमने पहले भी इसका जिक्र किया है कि कुछ राज्यों की सेवाओं में नियुक्तियां निवास-संबंधी नियमों के आधार पर की जाती है। यह बात समझ में आती है कि स्थानीय लोगों की यह ख्वाहिश हो कि वहां की सेवाओं में मुख्यतः 'उसी धरती के पुत्र' हों। लेकिन इसकी भी सीमाएं हैं। जब निवास के नियमों जैसी युक्तियों से वहां की जन-सेवाओं को केवल उस राज्य के बहुमत की भाषा जाननेवालों की एकमात्र संपत्ति बना दिया जाता है, तो प्रशासनिक दक्षता पर बट्टा लगता है और प्रतिभा के स्वच्छंद विचरण में बाधा होती हैं।

हमें यह देख देखकर बड़ी चिंता हुई है कि एक राज्य में निवास-

नियमों को न केवल जन-सेवाओं में प्रवेश करने के लिए ही, बल्कि ठेकेदारी देने, मछली पकड़ने, नाव चलाने, चुंगी के पुलों, जंगलों और आबकारी की दूकानों के बारे में अधिकार देने के लिए भी लागू किया जाता था। इस राज्य में अधिवास प्राप्त करने के लिए आवश्यक शर्तें भी ध्यान देने योग्य हैं। वे यह हैं—(क) प्रार्थी का मकान उसी राज्य में हो। (ख) उसमें वह दस साल रहा हो। (ग) मृत्यु तक उसकी उस राज्य में ही रहने की प्रत्यक्ष इच्छा हो, और (घ) वह अपने पुराने अधिवास को त्याग दे। उसे इस बात से आंका जायगा कि प्रार्थी के मूल निवासस्थास पर कोई जमीन-जायदाद या स्वार्थ और लगाव है या नहीं और वह वहां बराबर जाता है या नहीं।

हमारी राय में इस प्रकार की शर्तें न केवल भारतीय संविधान के १५वें, १६वें और १९वें अनुच्छेदों के विरुद्ध हैं, बल्कि भारतीय नागरिकता की भावना के मूल को ही नष्ट करती हैं। यद्यपि इन प्रतिबंधों के विशुद्ध कानूनी पक्ष की जांच करना हमारा काम नहीं है, फिर भी हमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है कि इनका मिला-जुला प्रभाव संविधान के अभिप्रायों का अतिक्रमण करता है।

इस भाग के पहले अध्याय में हम पहले ही यह प्रस्ताव कर चुके हैं कि संविधान के अनुच्छेद ३७ (अ) (१) के अंतर्गत, कुछ राज्यों में लागू निवास-नियमों को रद्द करके समुचित संसदीय कानून बना दिये जांय।

इसके अतिरिक्त हमें बताया गया है कि कुछ राज्य-सरकारों ने बाहरवालों के लिए संपत्ति-उपार्जन पर यद्यपि सिद्धांत रूप में कोई प्रतिबंध नहीं लगाया, लेकिन व्यवहार में ऐसे प्रतिबंध लगा दिये हैं। स्पष्टतः जहां कहीं भी इस प्रकार की प्रशासनिक कुवृत्तियां विद्यमान हों, वहां उनका तुरंत निराकरण किया जाना चाहिये, अन्यथा संयुक्त भारतीय नागरिकता की भावना अर्थहीन साबित होगी।

कुछ दूसरे उपाय भी हैं, जिन्हें अगर लागू किया जाय तो हमें विश्वास है कि देश की पृथकतावादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाया जा सकेगा। साथ ही उनसे अखिल-भारतीय नीतियों को सही

ढंग से क्रियान्वित करने में अधिक अंतर्राज्यीय सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

इस संबंध में हमारा पहला प्रस्ताव यह है कि जहांतक हो सके अखिल-भारतीय सेवाओं की किसी भी श्रेणी में नये प्रवेशकर्ताओं में से ५० प्रतिशत व्यक्ति संबद्धराज्यों से बाहर के लिये जांय। हमें ज्ञात हुआ है कि कुछ राज्य-सरकारों ने पहले ही से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है कि प्रतिवर्ष भारतीय-प्रशासन-सेवा में प्रवेश करनेवाला एक नया सदस्य राज्य के बाहर से लिया जाय। हमें मिली हुई सूचना के अनुसार, यह परिणाम भारतीय-प्रशासन-सेवा में कर्मचारियों के वार्षिक-नियोजन का करीब-करीब एक-तिहाई हिस्सा है। सिद्धांत के अलावा इस बात को जिस रूप में स्वीकार किया गया है, उसमें इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया है कि भारतीय प्रशासन-सेवा के २५ प्रतिशत रिक्त स्थान तरक्कियां देकर भर दिये जाते हैं। अतः हमारा प्रस्ताव है कि ५० प्रतिशतवाले हिसाब में वे स्थान शामिल न किये जांय, जो उस राज्य में नीचे की नौकरियों में तरक्की देकर भरे जाते हैं, और इस सिद्धांत को अखिल-भारतीय सेवाओं पर लागू किया जाय। इस प्रकार का यत्न भी किया जाना चाहिये कि अखिल-भारतीय सेवाओं में राज्य के बाहर से भरती किये जानेवाले सदस्यों का अनुपात कर्मचारियों को केंद्र में डेपुटेशन पर भेजने आदि विधियों के द्वारा घटाया नहीं जाय।

हम यह भी ठीक समझते हैं कि भारतीय प्रशासन-सेवा तथा भारतीय पुलिस-सेवा के अतिरिक्त कुछ और अखिल-भारतीय सेवाएं स्थापित की जांय। हमें ज्ञात हुआ है कि कुछ समय से यह बात केंद्रीय-मंत्रालयों के विचाराधीन है कि कुछ खास तकनीकी विभागों के लिए कुछ अखिल भारतीय संवर्ग (कैडर) बनें और विशेषतः भारतीय इंजीनीयर-सेवा फिर से चलाई जाय। महत्वपूर्ण विकास-योजनाओं को क्रियान्वित करने के सिलसिले में केंद्रीय और राज्य-सरकारों को काफी निकट सहयोग करना पड़ता है। इस कार्य में तकनीकी जानकारों को सामान्य आधार पर भरती और प्रशिक्षित करने की जरूरत होती है। यह भी जरूरी होता है कि उनकी दक्षता के स्तर सामान्य हों और उनमें यह सद्भाव हो कि वे एक महत्वपूर्ण और सामान्य संवर्ग के पदाधिकारी हैं।

अतः हम भारतीय इंजीनियर-सेवा, भारतीय वन-सेवा और भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य-सेवा की स्थापना करने की सिफारिश करते हैं।[1]

अलग या सामूहिक रूप में अखिल-भारतीय सेवाओं की स्थापना का औचित्य यह है कि वे अफसर, जिनके सिर पर भविष्य में प्रशासन का बोझ पड़ेगा, एक अखिल-भारतीय दृष्टिकोण अपना सकें। लेकिन यदि अखिल-भारतीय सेवाओं के सदस्य ज्यादातर एक ही विभाग में या केंद्रीय-सरकार के पास डेपुटेशन में रखे जाने लगें, तो यह लाभ निरर्थक साबित हो जायगा। केंद्रीय-सरकार अखिल-भारतीय सेवाओं के मामले में पहले ही से जागरूक है और वह कर्मचारियों की राज्यों में बदली करने की नीति को नियमित रूप से लागू करने का प्रयत्न करती है। यह कहना कठिन है कि केंद्रीय-सरकार ने जिस नियम को सिद्धांत रूप में माना है, वह कहांतक कार्य-रूप में आसान रहता है। लेकिन हमने जिस ढांचे का प्रस्ताव किया है, उसमें केंद्र और राज्यों के बीच कर्मचारियों के बराबर तबादले का होते रहना और भी महत्वपूर्ण होगा।

एक दूसरी बात जिस पर हम जोर देना चाहेंगे, वह यह है कि परीक्षणकालीन प्रशिक्षण में अखिल-भारतीय और केंद्रीय सेवाओं में भरती होनेवालों के पाठ्यक्रम में भारत का इतिहास, भूगोल, धर्म और रीति-नीति जैसे विषयों का ज्ञान अवश्य कराया जाना चाहिये। हम जानते हैं कि यदि प्रशिक्षणकाल को बढ़ा दिया जाय तो भी इन विषयों का विस्तृत ज्ञान प्रदान करना संभव नहीं होगा। अधिक महत्व की बात यह है कि परीक्षा-कालीन कर्मचारियों को प्रशिक्षण पूरा करने के समय में अखिल-भारतीय दृष्टिकोण अपना कर अपने-आपको आंध्र, मराठा, तमिल या बंगाली समझना भूल जाना चाहिए। आजकल विश्वविद्यालयों में प्रादेशिक भाषाओं को जितना महत्व दिया जाने लगा है उससे अवश्य ही प्रादेशिकतावादी प्रवृत्तियों का विकास होगा। इस प्रवृत्ति का निरा-

---

१. इस सिफारिश को भारत-सरकार स्वीकार कर चुकी है।

करण करने के लिए ऐसे प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये जो अखिल-भारतीय दृष्टिकोण पर जोर दे। हमें ज्ञात हुआ है कि हाल ही में निर्णय किया गया है कि भारतीय प्रशासन-सेवा में प्रवेश करनेवाले नये सदस्यों के पाठ्यक्रम में पहली पंचवर्षीय योजना का विस्तारपूर्ण अध्ययन सम्मिलित कर दिया जाय। हमारा सुझाव है कि इसके अतिरिक्त, भारत के इतिहास, भूगोल, धर्म और रीति-नीति का आवश्यक ज्ञान भी अखिल भारतीय तथा केंद्रीय सेवाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अखिल-भारतीय और केंद्रीय सेवाओं के सदस्यों के प्रशिक्षण के बारे में हमारा एक और सुझाव भी है। भारत संघ के सरकारी कामों के लिए हिन्दी को क्रमशः मान्यता देना निस्संदेह राष्ट्रीय एकता का एक महत्वपूर्ण उपादान होगा। लेकिन यह भी बहुत जरूरी है कि हिन्दी के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं को भी अखिल-भारतीय और केंद्रीय सेवाओं के प्रशिक्षण-कार्यक्रम में अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय। आजकल इसका अभाव पाया जाता है। भारत सरकार ने हाल में एक नीति संबंधी वक्तव्य अखिल-भारतीय सेवाओं में भरती के लिए भविष्य में होनेवाली प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम के विषय में प्रकाशित किया है। इसमें इस सुझाव का उल्लेख किया गया है कि हिन्दी बोलनेवाले क्षेत्रों के परीक्षार्थियों को हिंदी के अलावा एक अन्य भारतीय भाषा में योग्यता की परीक्षा पास करने को कहा जाय। भारत सरकार की नीति की तफसील आगे चलकर निश्चित की जायगी। हम केवल इतना ही सुझाव देना चाहते हैं कि यह सिद्धांत केंद्रीय सेवाओं पर भी लागू किया जाना चाहिए, और हम कहना चाहेंगे कि इस सुझाव पर अमल सेवा-कर्मचारियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में बदल सकने के लिए भी आवश्यक है। हिंदी के अतिरिक्त दूसरी भारतीय भाषा दक्षिण भारत की कोई भाषा हो, तो अच्छा है।

शासन के प्रमुख अवयवों का गठन इस प्रकार करना चाहिए कि उनसे जनता में विश्वास पैदा हो और प्रादेशिकतावादी प्रवृत्तियों पर रोक लगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए हम यह प्रस्ताव करेंगे कि

प्रत्येक उच्चन्यायालय के न्यायाधीशों का एक-तिहाई भाग उस राज्य के बाहर से लिया जाय। न्यायाधीशों की नियुक्ति करने में निस्संदेह व्यावसायिक अनुभव और योग्यता ही सर्वप्रमुख कसौटी होनी चाहिए। लेकिन हमने जो सुझाव दिये हैं उनके आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति का वरण-क्षेत्र और भी बड़ा हो जायगा। साथ ही उसमें एक यह भी अच्छाई होगी कि न्यायाधिकारी वर्ग के ऊंचे पदों पर नियुक्ति यथासंभव उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार होने लगेगी, जिनके अनुसार प्रशासनिक सेवा की होती है।

जैसा हम पहले ही कह चुके हैं, हिंदी को क्रमशः संघ के राजकीय कार्यों के लिए अपनाना देश की एकता के लिए एक महत्वपूर्ण उपादान होगा। किंतु राष्ट्रीय भाषा को एकीकरण का पावन सूत्र बनने के लिए अधिक व्यापक होना चाहिये। अंग्रेजी ने एक विदेशी भाषा होने के बावजूद, भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोगों को एक दूसरे के नजदीक खींचा; क्योंकि वह एक तरफ तो केंद्रीय और प्रांतीय, दोनों स्तरों पर सरकारी भाषा थी, और दूसरी ओर वह देश भर में उच्च शिक्षा का माध्यम थी। अतः अंग्रेजी प्रशासनकार्य और ऊंचे विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम बनी और उच्च शिक्षा-संस्थाओं में समान मापदंड बनाये रखने में सहायक हुई।

कुछ हद तक हिंदी अंग्रेजी का स्थान लेती जा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी अंग्रेजी की जगह आयगी, किंतु राज्यों में प्रादेशिक भाषाएं काफी हद तक उसकी उतराधिकारी हो जायंगी। राजकीय-भाषा-आयोग, जिसे हाल में सरकार ने नियुक्त किया है, निस्संदेह इस बात पर गौर करेगा कि हिंदी को राजकीय भाषा बनाने के लिए संबद्ध संवैधानिक उपबंधों को किस तरह लागू किया जाय। फिर भी यह बिलकुल स्पष्ट है कि अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को बैठाने का काम इस प्रकार व्यवस्थित होना चाहिये जिससे देश के विभिन्न भागों में सामाजिक और राजनीतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से कोई रिक्त स्थान पैदा न होने पाये और देश के उच्च शिक्षा के स्तर को नुकसान न पहुंचने पाये।

देश की शिक्षा के स्तर में किसी भी संभावित हानि को गहरी चिंता

की दृष्टि से देखना चाहिए, क्योंकि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में बढ़ते हुए विकास के लिए भारत को उच्च कोटि के व्यक्तियों की जरूरत पड़ेगी, जिनके प्रशिक्षण का बोझ भी हमारी शिक्षाव्यवस्था पर पड़ेगा।

इस देश में उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को जहां चाहे वहां पढ़ सकने की और विश्वविद्यालयों और दूसरी संस्थाओं में परस्पर आवागमन की जो सुविधा रही, उसका केवल यही कारण नहीं था कि अंग्रेजी अब-तक शिक्षा का माध्यम रही, बल्कि यह भी था कि साधारणतया शिक्षा और शोध के स्तर प्रायः समान थे। अब इनमें से कुछ संस्थाएं प्रादेशिक भाषाओं को अपना माध्यम बनाने का विचार कर रही हैं। किंतु यदि इनमें अंग्रेजी को असमय ही हटा दिया गया और उस भाषा में शोध के लिए आवश्यक योग्यता प्रदान करने के साधन नहीं जुटाये गए, तो उच्च शिक्षा के स्तर को काफी क्षति पहुंचेगी।

याद रहे कि अंग्रेजी एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय भाषा है और इसका ज्ञान भारतीय छात्रों के लिए अन्य प्रगतिशील देशों द्वारा उच्च अध्ययन के परिणामों को जानने का द्वार खोल देता है। जैसा कि माध्यमिक शिक्षा आयोग ने बताया है, दुनिया के अनेक देशों में अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था की गई है। उदाहरण के लिए, सोवियत रूस को लें, वहां मिडिल या माध्यमिक शिक्षा के स्कूलों में कोई एक विदेशी भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है। अतः प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के बाद भी हमें अपनी प्रमुख शिक्षा-संस्थाओं में अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं की पढ़ाई की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

हम हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं की पढ़ाई का महत्व पूरी तरह समझते हैं, फिर भी हमारा विचार है कि उच्च औद्योगिक शिक्षा के लिए अंग्रेजी का जो इस्तेमाल हो रहा है, वह इन भाषाओं के विकास में बाधा नहीं डालता।

राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से, यह बहुत ही महत्व की बात है कि उत्तर और दक्षिण भारत में निकटतर संपर्क हो। वे सभी संस्थाएं और

संगठन, जो इस संपर्क में सहायक हों, उन्हें भारत सरकार की ओर से विशेष प्रोत्साहन मिलना चाहिये। हैदराबाद का उस्मानिया विश्व-विद्यालय इसी प्रकार की एक संस्था है। हमारा प्रस्ताव है कि इस विश्वविद्यालय को केंद्रीय सरकार के आधीन रखा जाय। इसमें शिक्षा का स्तर काफी ऊंचा किया जाय। यह समीपवर्ती इलाकों से विद्यार्थियों को आकर्षित करेगा और दक्षिण भारत के लिए उपयोगी होगा।

हम और अधिक दक्षिण में, एक और केंद्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करने का सुझाव देंगे, जहां हिंदी पर खास तौर से जोर दिया जाय। इसी प्रकार उत्तर के विश्वविद्यालयों में दक्षिण भारत की भाषाओं और संस्कृत को पढ़ाने की सुविधाएं होनी चाहिये।

पिछले पैराग्राफों में हमने जो सुझाव पेश किये हैं. उनका उद्देश्य अधिकतर प्रशासनिक एकता पैदा करना और पृथकता की उन प्रवृत्तियों को रोकना है जो स्वयं प्रशासन के अंदर और सारे देश में पनप सकती हैं। यद्यपि ये कार्रवाईयां महत्वपूर्ण हैं, तथापि ये स्वयं अपने में भारतीय राष्ट्रीयता की आधार-शिला को मजबूत बनाने के लिए सब-कुछ नहीं हैं। राष्ट्रीय एकता एक प्रबल और सजीव शक्ति बन कर राष्ट्र को विभाजन और संकीर्ण प्रवृत्तियों से तभी बचा सकती है जब लोगों के मन और भावनाओं का सच्चा एकीकरण हो चुका हो। सौभाग्य की बात है कि उस एकीकरण में हाथ बंटानेवाली शक्तियां पहले से सक्रिय हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि उन शक्तियों के उन्मुक्त संचरण में कोई अवरोध न आने पाये। समाप्त करने से पहले हम इस विषय पर कुछ और कहना चाहेंगे।

आज भारत में महान सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन होनेवाले हैं। इन परिवर्तनोंका असर हरेक संस्था पर पड़ेगा और इसलिये हमारी परंपरागत विचारपद्धतिऔर रहन-सहन के तरीकों की बार-बार समीक्षा करते रहने की आवश्यकता होगी।

देश ने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समानता के आदर्श को अपनाया है और यह आज की एक महत्वपूर्ण घटना है। समानता के इस आदर्श को साकार करने के मार्ग में जो कठिनाइयां हैं, और जिन्हें

दूर करने की सरकार ने ठानी है, हम उनका महत्व कम करना नहीं चाहते, फिर भी यह बात प्रगति की द्योतक है कि तुलनात्मक दृष्टि से समाज के पिछड़े हुए वर्गों पर भी आज ध्यान दिया जारहा है। इस तरह देश के राजनीतिक गठन की एक निर्बलता क्रमशः दूर होती जारही है।

अब एक और महत्वपूर्ण शक्ति की ओर ध्यान देने की जरूरत है, जो बड़े पैमाने पर लोगों की आंतरिक विस्थापना के कारण भाषा संबंधी स्थिति को स्थिर नहीं रहने देती। आर्थिक अवसरों और आवागमन के साधनों के विकास से विगत वर्षों में भारत संघ के अंदर सामान्य गतिशीलता बढ़ती जारही है। यहांतक कि व्यक्तिगत कानूनों, (जिनमें हिंदू समाज में उत्तराधिकार का वह कानून भी है, जिसे अब तक परिवर्तन शून्य समझा जाता था) के संबंध में बहुत पुराने विचारों में भी प्रगतिशील और आधुनिक समाज की जरूरतों के अनुसार परिवर्तन आरहे हैं। उद्योगीकरण में महान अभिवृद्धि के कारण, जो केंद्र के तत्वावधान में आयोजित होरहा है, लोगों को अपना निवास-स्थान बदल लेने की प्रवृत्ति में और भी वृद्धि होने की संभावना है। इसके फलस्वरूप सारे देश में ऐसे शहरों या छोटी आबादियों का पनपना अनिवार्य है, जिनकी विशेषता उनकी प्रांतीयता होगी।

इस देश में आर्थिक आयोजन का जो क्रम अपनाया गया है उसके बहुत बड़े परिणाम निकलेंगे। जब साधनों का प्रयोग और धनविनियोग प्रदेश या राज्य के स्तर पर न होकर राष्ट्रीय स्तर पर होगा, तब सभी राज्य अनिवार्य रूप से राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में संयुक्त रूप से योग देकर अधिक-से-अधिक एक सूत्र में आबद्ध होंगे।

राज्यों के पुनर्गठन के संबंध में अपने सुझावों का प्रतिपादन करते समय हम स्वभावतः इस विचार से अधिक चिंतित रहे हैं कि विभिन्न दृष्टिकोणों में अधिकतम समझौता किस प्रकार कराया जाय। लेकिन हमने उन गतिशील शक्तियों पर भी गौर किया है, जिनका उल्लेख हम पिछले पैराग्राफों में कर चुके हैं। अतः हम इस बात पर जोर देना

चाहते हैं कि ठीक अर्थों में राज्यों में पुनर्गठन का तात्पर्य आपसी तनावों को दूर करने के लिए आवश्यक पुनर्व्यवस्था करना और संघ को अधिक प्रभावशाली ढंग से काम करने में सहायता देना ही है।

भारत संघ ही हमारी राष्ट्रीयता का आधार है और इसी संघ में हमारे भविष्य की आशाएं केंद्रित हैं। सभी राज्य उस संघ के अंग मात्र हैं। हम मानते हैं कि शरीर के अंगों का स्वस्थ और मजबूत होना बहुत आवश्यक है और उनकी सभी प्रकार की कमजोरी दूर की जानी चाहिये। लेकिन भारत संघ की शक्ति और उसके पनपने और विकसित होने की क्षमता ही देश के समस्त परिवर्तनों का सर्वोपरि आधार होना चाहिए।

भारत जैसे विशाल देश में प्रादेशिकता का न्यायोचित स्थान है, किंतु जबतक प्रादेशिकता की सीमाएं नहीं समझ ली जातीं और जबतक देश की केवल सामाजिक विचारधारा में ही नहीं, बल्कि आर्थिक विचारधारा में भी, संघ की सर्वोच्चता स्वीकार नहीं कर ली जाती, तबतक राष्ट्र की दृष्टि से हम लोगों के लिए वह कमजोरी की जड़ बनी रहेगी। अगर इस बात को जनता ने समझ लिया तो हमें कोई शंका नहीं कि राज्यों के पुनर्गठन के कारण पैदा होनेवाली समस्याएं विशाल राजनीतिक विवादों का रूप धारण नहीं कर सकेंगी।

स्वतंत्र भारत प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। जो कुछ भी सफलता हमें मिली है उस पर सही मानों में गर्व किया जा सकता है। देश के विभाजन के बाद पैदा होने वाली परेशानी और चिंतापूर्ण परिस्थितियों में भारतीय रियासतों की दुस्तर समस्या को जिस विधि से सुलझाया गया, वह स्वयं भारतीय जनता की राजनीतिक शक्ति और बुद्धिमत्ता और कृत्रिम बंधनों तथा संकीर्ण वफादारियों का उन्मूलन करने के लिए उसकी दृढ़ता का परिचायक है।

हम इस कामना के साथ निर्णय करते हैं कि हमारी पुनर्गठन योजना पर इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर विचार किया जायगा, और सद्भावना रखनेवाले लोग उन लोगों से सहयोग करेंगे,

जिन पर समझ-बूझ और सहिष्णुता के वातावरण में राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखते हुए परस्पर विरोधी दावों और प्रादेशिक भावनाओं को संतुलित करने तथा संभावित निर्णयों को क्रियान्वित रूप देने की भारी जिम्मेदारी डाली गई है।

परिशिष्ठ—घ

क्षेत्रीय-विकास के कुछ निर्देशक[1]

कृषि—कुछ दृष्टियों से देश के विभिन्न भागों में विकास के बुनियादी पहलू कृषि-उत्पादन की प्रगति से संबंधित हैं। यह कुछ तो पूंजी विनियोजन और सरकारी-संगठन का परिणाम हो सकता है और कुछ अन्य तत्त्वों ने योग दिया है। नीचे की तालिका से प्रकट होता है कि विभिन्न राज्यों में कितनी वृद्धि हुई :

खाद्यान्न

(दस लाख टन में)

क्षेत्र	१९४९-५०	१९५३-५४	१९६०-६१	१९६५-६६ (प्रस्तावित)	दस वर्षों में % वृद्धि (पहली और दूसरी योजना)	पंद्रह वर्षों में % वृद्धि पहली, दूसरी और तीसरी प्रस्तावित योजना
उत्तरी	८.५	९.५	११.३	१५.१	५१	७८
मध्यवर्ती	१६.६	१९.५	२३.८	२९.०	४१	७२
पूर्वी	१४.३	१४.४	१८.८	२२.८	३१	५९
पश्चिमी	६.७	७.३	९.०	१०.९	३४	६३
दक्षिणी	१०.७	१४.७	१५.९	२१.९	४९	१०५
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रों को छोड़कर)	५७.१	६५.४	७८.८	९९.७	४१	७५

१. भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास-योजना आयोग, नई दिल्ली के प्रकाशन से उद्धरित।

इसी प्रकार की जानकारी अगली तालिकाओं में कपास, तिलहन, गन्ना और पटसन के बारे में दी गई है।

कपास

(लाख गांठें)

क्षेत्र	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६ (प्रस्तावित)	१० साल में %वृद्धि पहली और दूसरी यो०	१५ साल में %वृद्धि पहली दूसरी और ती० यो० प्रस्तावित
उत्तरी	४.४	७.९	६.४	१५.५	१९४	२५०
मध्यवर्ती	३.२	४.३	५.०	६.०	५६	१८१
पूर्वी	०.१	०.१	०.१	१.२	—	११००
पश्चिमी	१४.४	१६.२	३०.१[1]	२६.३	१०६	१०३
दक्षिणी	६.६	८.४	६.३	१५.६	३५	१२६
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रों को छोड़कर)	२६.०	३६.६	५३.९	७०.६	८४	१४३

1. सन् १९६०-६१ का वर्ष इस क्षेत्र में विशेष रूप से अच्छा रहा।

तिलहन

(लाख टन)

क्षेत्र	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६ (प्रस्तावित)	दस साल में % वृद्धि पहली और दूसरी योजना	१५ साल में % वृद्धि पहली, दूसरी और तीसरी योजना प्रस्तावित
उत्तरी	२.३	४.२	३.९	७.०	७०	२०४
मध्यवर्ती	१०.९	१२.१	१८.३	२३.५	६८	११६
पूर्वी	२.४	२.३	२.३	४.७	–४	९६
पश्चिमी	९.८	१२.०	२०.१	२३.९	१०५	१४४
दक्षिणी	२५.४	२६.४	२६.८	३९.१	६	५४
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रों को छोड़कर)	५०.८	५७.०	७१.४	९८.२	४१	९३

इन तालिकाओं से पता चलता है कि न केवल कृषि-उत्पादनों के क्षेत्र में कितनी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, (हालांकि तेज विकास की दृष्टि से और भी अधिक उपज प्राप्त करनी होगी) बल्कि यह भी मालूम होता है कि विभिन्न क्षेत्रों में विकास की तुलनात्मक स्थिति कैसी रही। कृषि-उपज सारे देश की राष्ट्रीय-आय के मुकाबले राज्य की आय में प्रमुख योग देती है। उसको देखते हुए कृषि-उत्पादन की प्रगति, जैसा कि उत्तरी या दक्षिणी क्षेत्र में हुआ है, और लोक-समुदाय की आय में होनेवाली वृद्धि इसकी प्रामाणिक कसौटी है।

गन्ना (गुड़ के रूप में)

(लाख टन)

क्षेत्र	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६ (प्रस्तावित)	दस साल में % वृद्धि पहली और दूसरी योजना	१५ साल में % वृद्धि पहली, दूसरी और तीसरी योजना प्रस्तावित
उत्तरी	४.६	६.०	११.०	१०.८	१३९	१३५
मध्यवर्ती	१६.९	३०.५	४०.१	४४.६	३४	४९
पूर्वी	५.७	५.८	१०.५	१२.६	८४	१२१
पश्चिमी	५.६	५.५	१०.२	१३.१	८२	१३४
दक्षिणी	१०.३	११.८	१४.९	१८.३	४५	७८
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रोंकोछोड़कर)	५६.१	५९.६	८६.७	९९.४	५४	७७

पटसन

(लाख गांठें)

क्षेत्र	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६ (प्रस्तावित)	१० वर्षों में % वृद्धि (पहली और दूसरी योजना)	१५ वर्षों में % वृद्धि पहली, दूसरी और तीसरी (योजना प्रस्तावित)
उत्तरी	—	—	—	—	—	—
मध्यवर्ती	०.५	०.९	०.९	१.२	८०	१४०
पूर्वी	३१.९	४०.६	३९.०	५९.८	२२	८७
पश्चिमी	—	—	—	—	—	—
दक्षिणी	—	—	—	—	—	—
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रों को छोड़कर)	३२.४	४०,५	३९.९	६१.०	२३	८८

सिंचाई और बिजली—पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई और बिजली के विकास पर काफी ध्यान दिया गया है। सिंचाई और बिजली कीपरि-योजनाएं राज्यों की योजनाओं में दिखाई जाती हैं। बिजली परि-योजनाओं का, विशेष रूप से, उद्योगों के विकास के साथ घनिष्ठ संबंध है और किसी एक क्षेत्र में बिजली विकास का स्तर मुख्यत: राष्ट्रीय जरूरतों को ध्यान में रखकर किया जाता है। कुछ सिंचाई परियोजनाओं का जन्म राष्ट्रीय स्वरूप को ध्यान में रखकर हुआ है। उदाहरण के लिए राजस्थान-नहर और व्यास-योजनाओं का नाम लिया जा सकता है। आमतौर पर, बड़ी और मध्यम आकार की सिंचाई परियोजनाएं अपने-आप में ही नहीं, बल्कि काफी बड़े क्षेत्रों के विकास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। बिजली उद्योगों की कुंजी है और कृषि तथा छोटे उद्योगों के विकास के लिए भी जरूरी है। इसलिए बिजली का भावी-विकास के लिए काफी महत्व है।

प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई क्षेत्र में ४२ प्रतिशत वृद्धि हुई है और तीसरी योजना के अंत तक ८८ प्रतिशत तक बढ़ने की आशा है। क्षेत्रों के अनुसार इस वृद्धि को नीचे दिखाया गया है :

सिंचाई का क्षेत्र (समष्टि)

(दस लाख एकड़)

क्षेत्र	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	दस सालों वर्षों में % वृद्धि (पहली और दूसरी योजना)	१५ वर्षों में % वृद्धि (पहली, दूसरी और तीसरी योजना प्रस्तावित)
उत्तरी	११.३	१३.६	१५.७	१९.७	३९	७४
मध्यवर्ती	१५.१	१५.४	१९.८	२५.४	३१	६८
पूर्वी	११.९	११.७	१७.९	२४.५	३०	१०६
पस्चिमी	३.१	४.०	५.०	९.०	६१	१९०
दक्षिणी	१४.०	१८.१	२०.४	२५.८	४६	८४
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रोंको छोड़कर)	५५.४	६२.८	७८.८	१०४.४	४२	८८

विभिन्न क्षेत्रों में बिजली-विकास और शहरों तथा गांवों को बिजली देने संबंधी प्रगति को निम्न दो तालिकाओं में दर्शाया गया है।

विद्युत-उत्पादन-क्षमता के तुलनात्मक विकास का सही अनुमान करने के लिए यह जरूरी होगा कि संपूर्ण आवश्यकताओं और पंचवर्षीय योजनाओं के शुरू में विकास-स्तर को ध्यान में रखा जाय।

बिजली—प्रस्थापित बिजली बनाने की क्षमता

(मगावाट)

क्षेत्र	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६ (प्रस्तावित)	दस वर्षों में % वृद्धि (पहली और दूसरी योजना)	१५ वर्षों में % वृद्धि पहली, दूसरी और तीसरी योजना प्रस्तावित
उत्तरी	९८	२३६	४५७	१,१०४	३६६	१०२६
मध्यवर्ती	२२६	४६५	७६५	१,८४४	२३८	७१६
पूर्वी	५७५	१,१४७	१,८६४	३,२५४	२२४	४६६
पश्चिमी	४३८	८०८	१,२००	२.२१४	१७४	६०५
दक्षिणी	३३०	६३६	१,१७४	२,८५६	२५६	७६५
स्वयं-बिजली बनानेवाली ईकाइयां	५००	उपरोक्त क्षेत्रीय अंकों में शामिल	उपरोक्त क्षेत्रीय अंकों में शामिल	१,४४६	—	१४६
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रोंको छोड़कर)	२,२५७	३,२९२	५,४६०	१२,७१८	१४२	४६३

कस्बों और गांवों में बिजली-विकास

क्षेत्र	कस्बों और गांवों की कुल संख्या	१९५६-५७	१९६०-६१	१९६५-६६	कालम ४ कालम २ के % के रूप में	कालम ५ कालम २ के % के रूप में
		के अंत में बिजली पानेवाले कस्बे और गांव				
उत्तरी	५९,९८०	१,४१८	२,२७१	४,७७१	३.८	९.९
मध्यवर्ती	१,८२,४४४	३,४६८	४,९३४	७,९३४	२.७	४.३
पूर्वी	१,७९,४६१	१,२११	२,४७६	५,२१६	१.३	२.९
पश्चिमी	५४,९०४	७११	१,७२१	३,६२१	३.१	६.५
दक्षिणी	७६,२४१	६,३९०	११,२४४	२०,७४४	१४.७	२७.२
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रोंकोछोड़कर)	५५३,०३०	१३,१९८	२२,६८६	४२,२८६	४.१	७.६

सड़कें, रेलें और बंदरगाह—सड़क-विकास राज्यों की योजनाओं में महत्वपूर्ण भेद है और प्रगति का एक उपयोगी निर्देशक है। पुनर्गठित राज्यों के बारे में सन् १९५६ के आंकड़े उपलब्ध हैं और सब से अंतिम वर्ष सन् १९५९ है, जिसके विषय में जानकारी प्रस्तुत की गई है। इन सालों में विभिन्न क्षेत्रों में प्रति १०० वर्गमील और प्रति हजार जन-संख्या तैयार सड़कों की लंबाई इस प्रकार है :

सड़कें-मीलों में

क्षेत्र	मार्च १९५६			मार्च १९५९		
	सड़क मील (पक्की सड़क)	प्रति सैंकड़ा वर्ग मील	प्रति हजार जन-सं०	रोड मील (पक्की सड़क)	प्रति सैंकड़ा व० मी०	प्रति हजार जन-सं०
उत्तरी	१०,७५४	३.९४	०.२७	१३,८४४	५.२२	०.३५
मध्यवर्ती	२२,६५७	७.९७	०.२३	२३,५३१	८.२८	०.२४
पूर्वी	१६,४९४	६.७०	०.१६	१८,८२६	९.४८	०.१९
पश्चिमी	१८,४१७	९.६४	०.३३	२०.४६४	१०.७१	०.३७
दक्षिणी	४३,०७६	१८.०२	०.४३	५३,०३४	२१.८१	०.५२
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रों को छोड़कर)	१,१२,३९८	९.०६	०.२८	१,२९,६९९	१०.८७	०.३३

कभी-कभी देश के विभिन्न भागों में रेलों के जाल और उनके विभाजन के बारे में ध्यान खींचा जाता है। रेलें सेवा की माध्यम हैं और उन्हें विकासशील राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की जरूरतें पूरी करनी होती हैं। प्रथम पंचवर्षीय-योजना में युद्धकाल और युद्धकाल के तत्काल बाद की अवधि में पहुंची हानि को पूरा करके रेल-प्रणाली पुनर्स्थापन की व्यवस्था की गई। दूसरी योजना में रेलों का विस्तार औद्योगिक-विकास की जरूरतों को ध्यान में रखकर किया गया, विशेषकर इस्पात, कोयला और अन्य भारी उद्योगों को सामने रखा गया। दूसरी योजना के शुरू और अंत में रेलमार्ग की लंबाई मीलों में कितनी थी और दूसरी योजना की अवधि में क्या वृद्धि हुई, यह आगामी तालिका में बताया गया है:

रेल-मार्ग की लंबाई

(मीलों में)

क्षेत्र	दूसरी योजना के शुरू में	दूसरी योजना की अवधि में वृद्धि	दूसरी योजना के अंत में कुल लंबाई
उत्तरी	५,५५७	४७	५,६०४
मध्यवर्ती	८,३०१	२२०	८,५२१
पूर्वी	६,७५५	२०१	६,९५६
पश्चिमी	६,३१९	२०५	६,५२४
दक्षिणी	७,१५५	९८	७,२५३
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रों को छोड़कर)	३४,०८७	७७१	३४,८५८

परिवहन पर विचार करते समय, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय जरूरतों के समस्त क्षेत्र की पूर्ति करनेवाले विभिन्न माध्यमों, जैसे सड़कें, बंदरगाह आदि का खयाल रखना चाहिए। इस प्रकार दूसरी योजना की अवधि में बंदरगाहों में ४५ करोड़ रुपये की पूंजी लगी और तीसरी योजना में यह राशि ७५ करोड़ रुपया होगी। इस पूंजी को पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्रों में करीब-करीब बराबर बांटा गया है।

मानव साधनों का विकास—मानव साधनों का विकास कुछ अर्थों में आर्थिक विकास का सब से महत्वपूर्ण पहलू है। इस क्षेत्र की प्रगति बहुत ठीक-ठीक नहीं आंकी जा सकती, क्योंकि संख्या के मुकाबले गुण का महत्व कम नहीं होता इसलिए उसका कुछ हिसाब इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है कि विभिन्न क्षेत्रों के दो चुने क्षेत्रों में दूसरी योजना के अंत तक क्या प्रगति होने की आशा की जाती है।

(१) ६ से ११ वर्ष के बच्चों के लिए शैक्षणिक सुविधाएं

क्षेत्र	१९५५-५६ प्रतिशत	१९६०-६१ प्रतिशत	१९६५-६६ प्रतिशत
उत्तरी	३८.६	५१.३	७०.७
मध्यवर्ती	३५.६	४५.९	६२.४
पूर्वी	४९.३	५७.३	७२.२
पश्चिमी	६६.४	७२.९	८८.३
दक्षिणी	६७.४	७४.७	९३.५
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्र छोड़कर)	५१.८	६०.७	७७.४

(२) अस्पतालों में रोगी-शैया-सुविधाएं

क्षेत्र	१९६०-६१		१९६५-६६	
	कुल संख्या	प्रति दसलाख जन-संख्या	कुल संख्या	प्रति दसलाख जन-संख्या
उत्तरी	२४,०३०	६०५	२९,२८०	६६७
मध्यवर्ती	२९,९२०	२८२	३९,७५८	३४३
पूर्वी	४४,१६०	४३९	५५,५९०	५०१
पश्चिमी	१६,०००	२६६	३९,८६६	२९६
दक्षिणी	६२,४७५	५६८	८०,७५१	६७५
सब क्षेत्र (संघीय क्षेत्रोंको छोड़कर)	१,७६,५८५	४४५	२,२५,२४५	५२२

तीसरी योजना में शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक-सेवाओं का देश के सभी भागों में विकास करने की व्यवस्था की गई है, ताकि

वे यथासंभव समान स्तर पर आ सकें। इस प्रकार ६ से ११ वर्ष के बच्चों के लिए आम शिक्षा, शुद्ध पीने के पानी की उपलब्धि, सब विकास खंडों में प्राथमिक स्वास्थ्य-केन्द्रों की स्थापना, विकास-खंड और ग्राम-स्तर पर विस्तार सेवाओं की उपलब्धि, और ग्राम एवं लघु उद्योगों और औद्योगिक बस्तियों का विकास आदि ऐसे काम हैं जो यद्यपि सुविधा के लिए राज्यों की योजनाओं में शामिल किये गए हैं. तथापि वास्तव में क्षेत्रों या राज्यों की अपेक्षा राष्ट्रीय लक्ष्य हैं। वास्तव में, विकास कार्यों का एक व्यापक क्षेत्र है, जिसमें राज्यों की योजनाओं और जिला विकास-खंड और ग्राम-स्तर की योजनाओं के जरिये विकास का स्वरूप समान राष्ट्रीय ध्येय पर आधारित है और उसके साथ यह संभावना जुड़ी हुई है कि विकास अंततः अन्य योजनाओं से मिलकर न केवल बराबर-बराबर होगा, बल्कि देश के विभिन्न भागों में रहन-सहन, आय और उत्पादन-क्षमता के स्तर भी न्यूनाधिक समान होंगे।

परिशिष्ट (ङ)

केन्द्रीय सरकार की औद्योगिक परियोजनाओं के स्थान

क—द्वितीय पंचवर्षीय योजना

	राज्य
क. उत्तरी क्षेत्र	
१. नांगल रासायनिक खाद कारखाना	पंजाब
ख. मध्यवर्ती क्षेत्र	
२. भिलाई इस्पात कारखाना	मध्य प्रदेश
३. भारी विद्युत सामग्री परियोजना	,,
ग. पूर्वी क्षेत्र	
४. सिंद्री रासायनिक खाद कारखाना	बिहार
५. ढलाई परियोजना	,,
६. भारी मशीनी परियोजना	,,
७. भारी मशीनी औजार परियोजना	,,
८. रूरकेला इस्पात कारखाना	उड़ीसा
९. रूरकेला रासायनिक खाद परियोजना	,,
१०. दुर्गापुर इस्पात कारखाना	पश्चिमी बंगाल
११. हिन्दुस्तान केबल्स	,,
१२. टाटा इण्डियन स्टील कम्पनी (विस्तार)	,,
घ. पश्चिमी क्षेत्र	
१३. हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक्स	महाराष्ट्र
ङ. दक्षिणी क्षेत्र	
१४. हिन्दुस्तान शिपयार्ड (जहाजनिर्माण)	आंध्रप्रदेश

१५. दक्षिण आरकट लिगनाइट (कोयला) परियोजना	मद्रास
१६. हिन्दुस्तान मशीनी औजार	मैसूर

ख—तीसरी पंचवर्षीय योजना

क. उत्तरी क्षेत्र	
१. न्यू मशीनी औजार वर्क्स	पंजाब
२. सूक्ष्म औजार परियोजना	राजस्थान
ख. मध्यवर्ती क्षेत्र	
३. भारी विद्युत परियोजना	मध्य प्रदेश
४. भिलाई इस्पात कारखाने का विस्तार	,,
५. भारी विद्युत सामग्री परियोजना का विस्तार	,,
६. सिक्युरिटी कागज मिल	,,
७. बुनियादी कांच प्रतिबिम्ब	,,
८. नेपा कागज मिल का विस्तार	,,
९. एण्टीबायोटिक (औषधि) कारखाना	उत्तर प्रदेश
१०. राजकीय वनस्पति तत्त्व कारखाने का विस्तार	,,
११. गोरखपुर रासायनिक खाद कारखाना	,,
१२. द्वितीय भारी विद्युत सामग्री परियोजना	,,
ग. पूर्वी क्षेत्र	
१३. नाहरकटिया रासायनिक खाद कारखाना	असम
१४. नूनमाटी तेल शोधक कारखाना	असम
१५. ढलाई परियोजना	बिहार
१६. भारी मशीनी परियोजना	,,
१७. बरौनी तेलशोधक कारखाना	,,
१८. भारी मशीनी परियोजना का विस्तार	,,

१९. ढलाई परियोजना का विस्तार	बिहार
२०. बोकारो इस्पात कारखाना	,,
२१. भारी मशीनी औजार परियोजना	,,
२२. रूरकेला रासायनिक खाद कारखाना	उड़ीसा
२३. रूरकेला इस्पात कारखाने का विस्तार	,,
२४. दुर्गापुर इस्पात कारखाना	पश्चिमी बंगाल
२५. खनिज मशीन परियोजना	,,
२६. खनिज मशीन परियोजना का विस्तार	,,
२७. दुर्गापुर इस्पात कारखाने का विस्तार	,,
२८. चश्मों के शीशों का कारखाना	,,
२९. मिश्रित धातु और औजार इस्पात कारखाना	,,
३०. हिन्दुस्तान केबल्स का विस्तार	,,
घ. पश्चिमी क्षेत्र	
३१. हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक (औषधि) परियोजना	महाराष्ट्र
३२. आर्गेनिक इण्टरमीडियेट कारखाना	महाराष्ट्र
३३. ट्राम्बे रासायनिक खाद कारखाना	,,
३४. भारी स्ट्रक्चरल वर्क्स	,,
३५. भारी प्लेट और वेसल वर्क्स	,,
३६. गुजरात तेल शोधन कारखाना	गुजरात
ङ. दक्षिण क्षेत्र	
३७. कृत्रिम औषधि परियोजना	आंध्रप्रदेश
३८. प्राग औजार कारखाने का विस्तार	,,
३९. तीसरी भारी विद्युत सामग्री परियोजना	,,
४०. हिन्दुस्तान शिपयार्ड (शुष्क तट)	,,
४१. हिन्दुस्तान शिपयार्ड का विस्तार	,,
४२. कच्ची फिल्म परियोजना	,,
४३. नेविली रासायनिक खाद कारखाना	,,

४४.	कोयला राख और कार्बनीकरण कारखाना	आंध्रप्रदेश
४५.	नेविली कोयला विद्युत कारखाना	,,
४६.	नेविली कोयला उच्चताप कार्बनीकरण कारखाना और लोह पिण्ड उत्पादन संबंधी सुविधाएं	,,
४७.	सूक्ष्म औजार परियोजना	केरल
४८.	वनस्पति रासायनिक कारखाना	,,
४९.	एफ० ए० सी० टी का विस्तार	,,
५०.	दूसरा शिपयार्ड	,,
५१.	हिन्दुस्तान मशीनी औजार का विस्तार	मैसूर
५२.	घड़ी कारखाना	,,

लोकतंत्र और समाजवाद पर कांग्रेस का प्रस्ताव[1]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, विदेशी शासन से देश को मुक्ति दिलानेवाली संस्था के रूप में, अपने सम्मुख न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का उद्देश्य बल्कि एक सामाजिक उद्देश्य भी रखा था। राष्ट्रीय-आंदोलन के इस सामाजिक उद्देश्य ने गांधीजी द्वारा नेतृत्व संभालने के बाद अधिक प्रमुखता प्राप्त की। इस उद्देश्य की अभिव्यक्ति कांग्रेस के कई प्रस्तावों में हुई, जिनमें १९३१ का कराची प्रस्ताव उल्लेखनीय है। महात्माजी के विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों, विशेषत: सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण, महिलाओं का सामाजिक उत्थान, ग्रामोन्नति तथा कुटीर-उद्योग इन सब का एक सामाजिक उद्देश्य था और इनसे जो नई शक्ति-पैदा हुई उससे स्वतन्त्रता-आंदोलन को बल मिला।

(२) स्वाधीनता के बाद, शासन-भार संभालनेवाली पार्टी के रूप में कांग्रेस की यह जिम्मेदारी स्वाभाविक ही थी कि वह अपने इन सामाजिक उद्देश्यों को यथार्थ रूप दे और अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए सक्रिय कदम उठाये। भारत के संविधान की प्रस्तावना और उसमें दिये गये निर्देशक सिद्धांतों को इसी दृष्टि से निर्धारित किया गया और संविधान की स्वीकृति के बाद से ये सिद्धांत हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य और उद्देश्य बन गये।

आवडी प्रस्ताव

(३) इसी संदर्भ में कांग्रेस के १९५५ के आवडी अधिवेशन में निश्चय किया गया कि कांग्रेस के इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तथा भारत के संविधान की प्रस्तावना और राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धांत

---

१. जनवरी १९६४ में भुवनेश्वर अधिवेशन में स्वीकृत।

के समर्थन के लिए इस प्रकार आयोजन किया जाना चाहिये कि उसका लक्ष्य समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना हो और उस समाज में उत्पादन के मुख्य साधनों पर सामाजिक स्वामित्व अथवा नियंत्रण हो, तथा उत्पापन क्रमशः बढ़ता रहे और राष्ट्रीय आय का समुचित वितरण हो। १९५७ में कांग्रेस ने अपने संविधान की धारा (१) के रूप में शांतिपूर्ण और न्यायोचित उपायों द्वारा समाजवादी सहकारी सम्मिलित राज्य की स्थापना के उद्देश्यों को अपनी औपचारिक स्वीकृति प्रदान की। इस प्रकार "समाजवादी ढंग के समाज" की स्थापना कांग्रेस का लक्ष्य और उद्देश्य बन गया। कांग्रेस अपने घटनापूर्ण इतिहास में सदा ही इस उद्देश्य की ओर दृढ़ता और सजगता के साथ बढ़ती रही है।

(४) इसके बाद कांग्रेस ने "समाजवाद के लिए आयोजन" के आधार पर दो आम चुनाव लड़े और अधिकतर भारतवासियों ने इस नीति का समर्थन किया। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं को बनाते समय इस उद्देश्य को सदा सामने रखा गया और संसद ने भी आर्थिक विकास के लिये समाजवादी ढंग को मान्यता प्रदान की।

(५) कांग्रेस के दृष्टिकोण में निहित उन मूल विचारों और कार्य-क्रमों के प्रमुख अंगों को प्रकाश में लाना आवश्यक है, जिनके द्वारा समाजवादी उद्देश्य को ज्यादा अच्छी तरह कार्य रूप में परिणित किया जाना है।

लोकतांत्रिक समाजवाद

(६) कांग्रेस भारतीय समाज के आर्थिक और सामाजिक संबंधों में क्रांति लाने के लिए काम कर रही है। यह क्रांति लोगों के विचार और दृष्टिकोण में और साथ ही उन संस्थाओं में आमूल परिवर्तन द्वारा लानी है, जिनके जरिये उन्हें काम करना है। हमारा उद्देश्य मानवी तथा भौतिक साधनों के पूर्णतम और सर्वाधिक कार्यक्षम उपयोग द्वारा देश में एक समृद्ध अर्थ-व्यवस्था कायम करना है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को खुशहाली का आश्वासन मिल सके। प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और प्रगति के फल का एक उचित अंश प्राप्त होना चाहिये। विशेषा--

धिकारों, विषमताओं और शोषण को समाप्त किया जाना चाहिये। यह परिवर्तन भारत के संविधान में प्रतिष्ठापित लोकतंत्रवादी तरीकों और मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए और उन्हें आगे बढ़ाते हुए शांतिपूर्ण साधनों द्वारा और जनता की सहमति से लाया जाना है। इस प्रकार कांग्रेस की विचाराधारा, संक्षेप में, लोकतंत्र, व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक न्याय पर आधारित लोकतांत्रिक समाजवाद है।

गरीबी दूर करना

(७) समाजवादी समाज कायम करने के लिए मुख्य ध्येय गरीबी और उससे पैदा होनेवाली बुराइयों को दूर करना होना चाहिए। इसके लिए कृषि तथा साथ ही उद्योग के उत्पादन स्तर को अधिकाधिक ऊंचा उठाते हुए शीघ्रता के साथ आर्थिक उन्नति प्राप्त करना जरूरी है। हमारी अर्थ-व्यवस्था के धीमे विकास का कारण अभीतक अपनी जन-शक्ति और प्राकृतिक संपदा के पूर्ण उपयोग की हमारी असमर्थता रही है और यह विज्ञान एवं तकनीक शास्त्र की उन्नति से पर्याप्त लाभ न उठाने के कारण है।

तकनीकों के स्तर में सुधार

(८) उत्पादन का एक आधुनिक यंत्र यथासंभव शीघ्र कायम करना होगा, ताकि देश की अर्थ-व्यवस्था को एक ऐसी आधुनिक और कार्य-क्षम अर्थ-व्यवस्था में बदला जा सके कि जिसमें एक उच्च स्तर का उत्पादन हो। भारत में कृषि-व्यवस्था पिछड़ी हुई है। कृषि उत्पादन के लिए विज्ञान और तकनीक शास्त्र की उन्नति के लाभ अधिकाधिक बढ़ती हुई श्रम-शक्ति को देखते हुए, खास तौर पर गांवों में जिसके लिए रोजगार के अवसर पैदा करना है, लघु और कुटीर स्तर पर विकेन्द्रित उद्योगों का देश की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान होगा। कुटीर और लघु-उद्योगों द्वारा आवश्यकता के अनुरूप और उचित पारिश्रमिक के आधार पर रोजगार दिलाने के लिए अति आवश्यक है कि तकनीकों के स्तर में शीघ्रता के साथ और निरंतर सुधार होता रहे, और ग्राम-

विकास के लिए यथासंभव व्यापक आधार पर बिजली की सुविधा उपलब्ध की जाय।

आयोजन की स्वीकृति

(९) विकास की संतोषजनक गति प्राप्त करने और अर्थव्यवस्था की एक मजबूत औद्योगिक नींव कायम करने के लिए आयोजन का रास्ता अपनाना अनिवार्य होजाता है। साधन, सामग्री, कार्यकुशलता और तकनीकी ज्ञान के हमारे साधन सीमित हैं। उन सीमित साधनों का अधिक-से-अधिक लाभ उठाने के लिये प्राथमिकताएं निर्धारित करनी होंगी और प्रभावपूर्ण ढंग से उन्हें क्रियान्वित रूप देने के लिए उचित नीतियां और संगठन बनाने होंगे। इसीलिए कांग्रेस ने संयोजित आर्थिक विकास का विचार अपनाया है।

(१०) संयोजित अर्थव्यवस्था के अनुशासन में विभिन्न स्तरों पर काफी हद तक नियंत्रण आवश्यक है, ताकि योजना के उत्पादन लक्ष्यों और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। यह आश्वासन पाना जरूरी है कि आर्थिक उन्नति से आय की विषमताएं और धन तथा उत्पादन के साधनों का केंद्रीकरण इतना न बढ़े कि जिससे आम लोगों को नुकसान पहुंचे। यदि ऐसा होता है तो समाज का स्थायित्व खतरे में पड़ जायगा। यदि इसके विपरीत लोगों के सामने एक न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था की तस्वीर हो, जो कि उनकी आंखों के सामने कदम-ब-कदम एक हकीकत की शक्ल लेती जा रही हो, तो विकास के कामों के लिए उनका उत्साह और सहयोग प्राप्त होगा और साधनों की वृद्धि में तथा तरक्की को तेज कदम बनाने में बड़ा भारी योग मिलेगा।

निम्नतम राष्ट्रीय स्तर

(११) इस संदर्भ में सर्वाधिक आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी बुनियादी जरूरतें पूरी होने का आश्वासन प्राप्त हो, और भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी एक राष्ट्रीय अल्पतम स्तर यथासंभव शीघ्र प्राप्त किया जाय। इस संबंध में राष्ट्र के सामने एक

लक्ष्य रखना चाहिये और यह उम्मीद करना अनुचित न होगा कि यह लक्ष्य पांचवीं योजना की समाप्ति तक काफी हदतक प्राप्त किया जा सकेगा; अन्यथा सर्वधारण के लिए योजना और प्रगति निरर्थक हो जायगी। यह स्वयं में आय और धन की उन बड़ी विषमताओं को कम करने का, जो कि आज मौजूद हैं, एक साधन होगा। और भी कई कदम उठाने होंगे, ताकि समाज की सबसे नीचे और सबसे ऊपर की सीढ़ियों के बीच का फासला एक उचित समय में प्रभावशाली ढंग से कम किया जा सके। नीति और संगठन दोनों क्षेत्रों में ये कदम उठाने होंगे।

(१२) निजी आय और संपत्ति को सीमित रखना आवश्यक है। यह प्रतिबंध खासतौर से विरासत में मिले धन और शहरी जायदाद पर लागू होना चाहिए। राज्य को पूंजीगत लाभों का एक बड़ा भाग मिलना चाहिए और उसे बगैर कमाई हुई आमदनी का वर्तमान की अपेक्षा एक बड़ा हिस्सा प्राप्त करना चाहिए।

(१३) राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और हमारे सामाजिक ध्येयों के अनुकूल देश के ऋण तथा विनियोग संबंधी साधनों को काम में लगाने के लिए सरका को वर्तमान रकी अपेक्षा अधिक कार्यक्षम स्थिति में होना चाहिये। आज छोटे उद्योगों को चलाने तथा नये काम शुरू करनेवालों को वित्तीय साधनों की उपलब्धि के मामले में बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता है। वित्तीय संस्थाओं में कुरीतिया हैं और गलत तरीकों को दूर करने के लिए अभी और कदम उठाने की भी जरूरत है।

सरकारी, निजी और सहकारी क्षेत्र

(१४) जैसा कि भारत सरकार के औद्योगिक-नीति-प्रस्ताव में निर्धारित किया गया है, सार्वजनिक क्षेत्र को व्यापार और उद्योग में एक महत्वपूर्ण और प्रमुख भूमिका अदा करनी है। सार्वजनिक क्षेत्र को बड़े पैमाने के उद्योग और व्यापार में, विशेषतः भारी और बुनियादी उद्योगों और आवश्यक वस्तुओं के व्यापार में क्रमशः अधिकाधिक बढ़ना है। देश की अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण स्थान है और उसे विकास की राष्ट्रीय योजना की व्यापक व्यूहरचना में अपनी भूमिका

अदा करनी है। निजी क्षेत्र में संगठन के सहकारी तरीके को, विशेषतः, कृषि, लघु-उद्योगों और कच्चे माल से पक्का माल तैयार करनेवाले उद्योगों तथा फुटकर व्यापार में अधिकाधिक महत्वपूर्ण स्थान पाना है।

उद्योग

(१५) एक ओर उद्योगों के संगठन में उचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये, तो दूसरी ओर समाज, उपभोक्ता, और मजदूर के हितों की कारगर तौर पर हिफाजत जरूरी है। श्रमिक को उद्योग के संचालन में पर्याप्त रूप से संबंधित किया जाना चाहिये और इस दिशा में शीघ्र प्रगति प्राप्त की जानी चाहिये। इससे उद्योग में हाथ बंटाने की भावना श्रमिक में पैदा होगी और अधिकतम उत्पादन संभव हो सकेगा।

मूल्य-वृद्धि पर नियंत्रण

(१६) समाज के निम्न आय-वर्गों और दुर्बल अंगों के लिए मूल्यों का स्तर विशेष महत्व का विषय है। मूल्यों में वृद्धि के अनुरूप आय में आमतौर पर समान वृद्धि नहीं होती। एक ओर उत्पादन को बढ़ाने के लिए सभी संभव उपाय काम में लाने पर जोर दिया जाना है, तो दूसरी ओर आवश्यक वस्तुओं की कमी होने पर अभाव की अवस्था का गलत फायदा उठाने को रोकने के लिए कदम उठाने होंगे। नियंत्रण तभी लागू किया जाना चाहिये जबकि वह समाज के वृहद् हित में अनिवार्य हो। नियंत्रण से लोगों को इतनी आपत्ति नहीं जितनी कि दोषी प्रशासन से है। कारगर और ईमानदार प्रशासन द्वारा और जनता का सहयोग प्राप्त करके इस प्रकार के नियंत्रणों के सफल क्रियान्वयन के लिए हर कोशिश की जानी चाहिये।

कृषि-अर्थ-व्यवस्था का ढांचा

(१७) भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में, कृषि-अर्थ-व्यवस्था का गठन, कृषि संबंधों और कानूनों का विशेष महत्व है। यह महत्व भारत के औद्योगिक विकास का उन्नत कृषि-उत्पादन से अविच्छिन्न संबंध के

कारण है, क्योंकि जबतक उपज-वृद्धि की दर बहुत अधिक नहीं बढ़ेगी, भारत को अपनी बढ़ती हुई आबादी के भोजन के लिए तबतक विदेशी सहायता पर निर्भर करना होगा।

(१८) कृषि-उत्पादन को अधिक बढ़ाने के लिए किसान को समय पर आवश्यक साधन-सामग्री तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराने की पूरी जिम्मेदारी समाज को उपयुक्त संस्थाओं के माध्यम से उठानी चाहिये। पशुपालन और बागवानी के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये, जो गांवों में आय तथा रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए अति आवश्यक है। किसान को सब प्रकार के ऋण दिलाने के लिए राष्ट्रीय और अन्य स्तरों से लेकर पंचायत तक के सभी स्तरों पर विशेष संस्थाएं खोली जानी चाहिये। कर्ज पाने की योग्यता पूंजी और संपत्ति के स्वामित्व पर नहीं बल्कि उत्पादन की सामर्थ्य पर अनिवार्य रूप से आधारित होनी चाहिए। खेती के काम में लगे हुए लोगों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि वे उन साधनों और सुविधाओं का, जो उन्हें उपलब्ध की जा रही हैं, पूरा लाभ उठा सकें। किसान को मौसम की परेशानियों से बचाने के लिए फसलों और मवेशियों के बीमे का तरीका शुरू किया जाना चाहिए। अलाभकर आराजियों के मामले में जरूरी है कि किसानों की अपनी इच्छा से सहकारी आधार पर खेतों की इकाई बढ़ाई जाय। किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य मिलना चाहिए, ताकि आवश्यक विनियोग करने में उसे सहायता मिले और वह कृषि-उत्पादन का स्तर क्रमशः ऊंचा उठाने के लिए पूरी कोशिश कर सके। खेत की उपज, विशेषतः धान का प्रोसेसिंग निजी लोगों के हाथ में नहीं रहना चाहिए। चावल की मिलों और प्रोसेसिंग की अन्य इकाइयों का संचालन सहकारी व्यवस्था द्वारा होना चाहिए और जबतक सभी मामलों में ऐसा संभव न हो इस प्रकार की ईकाइयों का संचालन क्रमशः सरकार द्वारा स्वयं किया जाना चाहिए। सभी कृषि-पदार्थों की बिक्री यथासंभव अधिकतम सहकारी समितियों द्वारा की जानी चाहिए; बिचोलिये के अत्यधिक मुनाफे को रोकने तथा उत्पादन-

कर्ता और उपभोक्ता की परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए ये कुछ उपाय जरूरी हैं।

(१६) कांग्रेस की भूमि संबंधी नीति का लक्ष्य यह है कि वास्तविक काश्तकार का राज्य से सीधा संबंध हो और बिचोलियों को खत्म किया जाय। इसके अलावा, खुद काश्त की आराजी की अधिकतम सीमा निर्धारित की जानी चाहिए। खेतिहर श्रमिक को दूसरे दर्जों के काम-धंधों में अल्पतम वेतन और रोजगार दिलाने का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

भूमि-सुधारों का लक्ष्य ग्राम समुदाय और स्वेच्छिक सहयोग पर आधारित एक सहकारी ग्राम-व्यवस्था होना चाहिए। देश में भूमि-सुधारों के क्रियान्वयन में असमता रही है। अगले दो वर्षों में भूमि-सुधार के समूचे कार्यक्रम को पूरा करने के लिए गंभीर प्रयत्न किये जाने चाहिए। काश्तकारों को रुपया उधार दिलाने, पूर्ति एवं बिक्री संबंधी सुविधाएं उपलब्ध कराने में सहकारिता को प्रमुख भूमिका अदा करनी है। जहां कहीं संभव हो, काश्तकारों की रजामंदी से सम्मिलित सहकारी खेती संगठित की जानी चाहिए। इस कार्यक्रम में पंचायती राज और सामुदायिक विकास को एक बड़ा भाग अदा करना है।

बालक के जन्म से अवसर की समानता

(२०) समाज सेवा के क्षेत्र में अपनी गतिविधियों को एक विशेष रूप देकर तथा सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रम की दिशा में निर्भीकता के साथ कदम उठाकर सर्वसाधारण और समाज के दुर्बल अंगों की असुविधाओं को काफी हदतक दूर किया जा सकता है और उन्हें अवसर की समानता प्रदान की जा सकती है। यद्यपि कठिनाई के समय सहायता पहुंचाने के लिए कुछ उपाय काम में लाये जा सकते हैं, किंतु अपने साधनों का सबसे लाभदायक उपयोग इस क्षेत्र में भी प्राथमिकताओं की किसी व्यवस्था द्वारा निर्धारित करना होगा। उदाहरण के लिए, गांवों में सब जगह सीमित अवधि पेय जल की व्यवस्था की जानी जाहिए। शिक्षा की सुविधाओं का प्रसार उच्च प्राथमिकता का एक अन्य विषय है। इस

मामले में और स्वास्थ्य के मामले में बालकों पर सर्वप्रथम ध्यान दिया जाना जाहिए। अवसर की समानता बच्चे के जन्म से आरंभ होनी चाहिए। प्रत्येक बालक को उसकी सामर्थ्य अनुसार शिक्षा की आवश्यक सुविधाएं मिलनी चाहिए। और किसी भी होनहार बालक को माता-पिता की गरीबी के कारण अपनी क्षमता के अनुसार उच्चतर स्तर तक पहुंचने से नहीं रोका जाना चाहिए।

वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा

(२१) रहन-सहन का उच्चतर स्तर और सामाजिक न्याय तथा सामाजिक सुरक्षा की उपलब्धि—ये सभी चीजें तेज गति से आर्थिक विकास कर सकने की हमारी सफलता पर निर्भर करती हैं। यह विज्ञान और तकनीक शास्त्र के पूर्णतम उपभोग द्वारा ही संभव है। वास्तव में एक समाजवादी समाज की कल्पना विज्ञान और तकनीक शास्त्र की सतत प्रगति के बिना नहीं की जा सकती। अतः वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा एक व्यापक आधार पर संगठित की जानी चाहिए और देश में अनुसंधान की शीघ्र प्रगति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए हालात पैदा किये जाने चाहिए।

लोकतंत्र और समाजवाद के लिए एक खतरा

(२२) समाज-विरोधी व्यवहार का प्रचलन हमारी आर्थिक और सामाजिक स्थिति का एक ऐसा पहलू है जिस पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है और जिसका धन के केंद्रीयकरण तथा विषमताओं और एकाधिकारवादी प्रवृत्तियों के बढ़ने से बड़ा संबंध है। सट्टेबाजी से मुनाफा, कई प्रकार से अनुचित आय और विभिन्न कानूनों के दायित्वों से बचने की नीयत के कारण चरित्रहीन व्यक्तियों के हाथों में अकारण बहुत अधिक धन इकट्ठा हो गया है। इस प्रकार के समाज विरोधी लोगों की कार्रवाई से अर्थ-व्यवस्था में बड़ी विकृतियां और अस्वस्थ प्रवृत्तियां पैदा होती हैं, जिससे देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन की नींव खोखली बन सकती है। समाज-विरोधी शक्तियों के विकास और

उनके बुरे प्रभाव से लोकतंत्र और समाजवाद के लिए खतरा पैदा होता है, जिसका मुकाबिला सुव्यवस्थित और सबल कार्रवाई द्वारा किया जाना चाहिए।

(२३) देश में आर्थिक उन्नति की अपेक्षाकृत धीमी गति प्रधानतः क्रियान्वयन में दोष और अभाव के कारण है। शासन-व्यवस्था को पंच-वर्षीय योजनाओं के निहित कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन के अनुरूप ढाल कर उसे पूरी तरह सक्रिय बनाना चाहिए। लोक-सेवकों के दृष्टिकोण और संगठन में तथा शासन के दिन-प्रति-दिन के काम के तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना जरूरी है।

सोचने और रहने के ढंग में आमूल परिवर्तन

(२४) समाजवाद का अर्थ लोगों के केवल आर्थिक संबंधों में परि-वर्तन नहीं बल्कि सामाजिक गठन तथा लोगों के सोचने और रहने के तरीकों में बुनियादी तब्दीली लाना है। कांग्रेस ने जिस समाजवादी व्यवस्था की कल्पना की है, उसमें जाति और वर्ग का कोई स्थान नहीं है। जन्माधिकार अथवा जाति अथवा वर्ग अथवा धन अथवा पद्-प्रतिष्ठा पर आधारित विशेषाधिकार के पुराने विचार त्याग दिए जाने चाहिए। श्रम के गौरव को मान्यता दी जानी चाहिए। वास्तव में, जीवन के हर पहलू में व्यक्ति की गरिमा आश्वस्त होनी चाहिए। कांग्रेसजन को अपने दैनिक जीवन में इस समाजवादी दर्शन का उदाहरण पेश करना चाहिए।

नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य

(२५) केवल भौतिक समृद्धि से मानव-जीवन संपन्न और सोद्देश्य नहीं होगा। अतः आर्थिक विकास के साथ नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को भी पनपाना होगा। केवल इसी प्रकार मानवीय साधनों और मानवी चरित्र का पूर्ण विकास संभव है। केवल इसी आधार पर निजी स्वार्थ सिद्धि के वर्तमान सामाजिक गठन को क्रमशः एक समाजवादी समाज में परिवर्तित किया जा सकता है और साथ ही व्यक्ति तथा समाज के पूर्ण विकास के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

(२६) यह है समाज की वह तस्वीर, जिसकी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने कल्पना की है, जिसमें दरिद्रता, रोग और अज्ञान समाप्त हो चुकेगा, जिसमें संपत्ति और किसी भी रूप में विशेषाधिकार का अत्यंत सीमित स्थान होगा, जिसमें सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होंगे और जिसमें व्यक्ति तथा समाज के जीवन को समृद्ध बनाने के लिए नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताएं योग देंगी ।